धर्मायण

अंक : 88
कार्तिक-पौष, 2072
अक्टूबर-मार्च, 2015-16 ई०

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

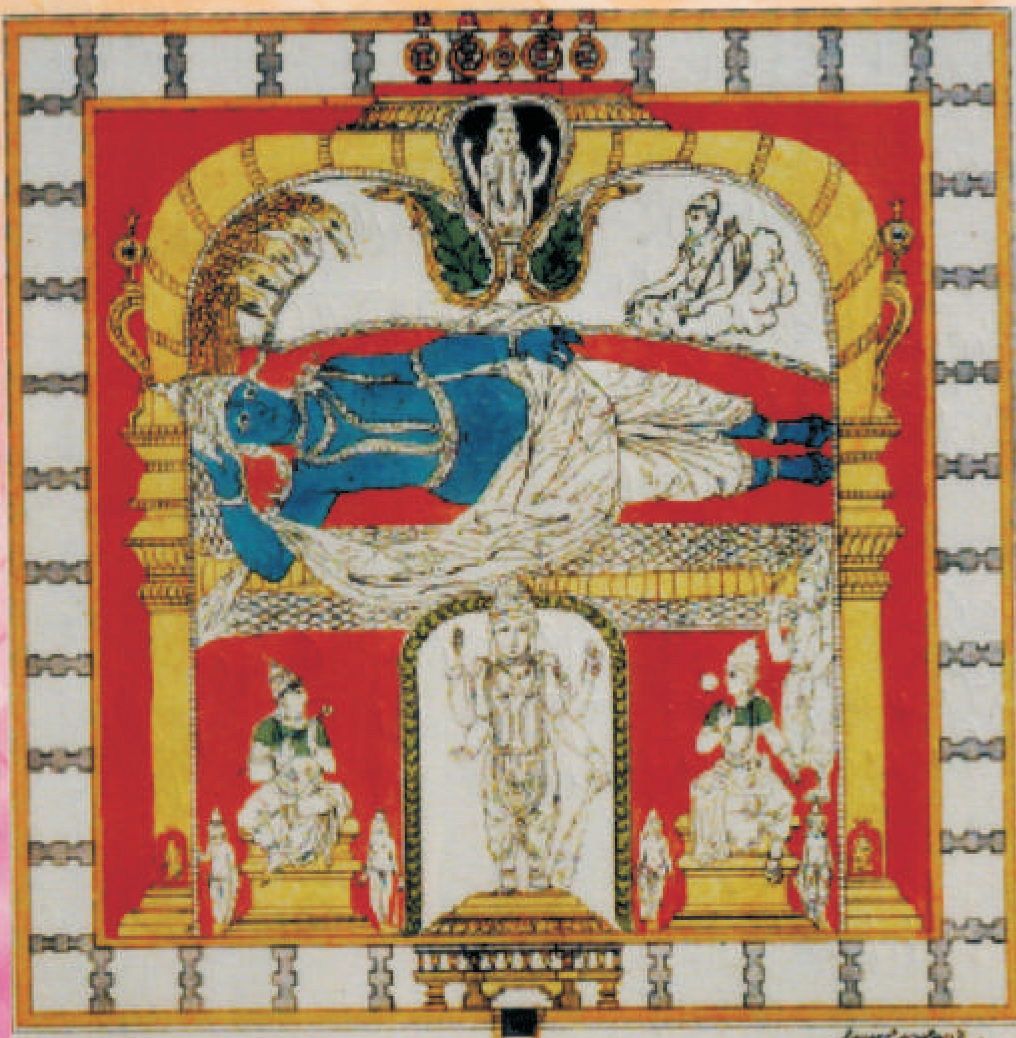

महावीर मन्दिर प्रकाशन

मूल्य: 15 रुपये

अशोक का वृक्ष

अशोक का वृक्ष आम के पेड़ के बराबर होता है। यह दो प्रकार का होता है। एक तो असली अशोक वृक्ष। और दूसरा उससे मिलता जुलता नकली अशोक वृक्ष।

संस्कृत - अशोक । **हिन्दी** - अशोक । **मराठी** - अशोपक । **गुजराती** - आसोपालव । **बंगाली** - अस्पाल, अशोक । **तेलुगू** - अशोकम । **तमिल** - अशोघम । **लैटिन** - जोनेसिया अशोका ।

परिचय- असली अशोक के वृक्ष को लैटिन भाषा में 'जोनेसिया अशोका' कहते हैं । यह आम के पेड़ जैसा छायादार वृक्ष होता है। इसके पत्ते 8-9 इंच लम्बे और दो-ढाई इंच चौड़े होते हैं । इसके पत्ते शुरू में तांबे जैसे रंग के होते हैं । इसीलिए इसे 'ताम्रपल्लव' भी कहते हैं । इसके नारंगी रंग के फूल वसन्त ऋतु में आते हैं । जो बाद में लाल रंग के हो जाते हैं । सुनहरे लाल रंग के फूलों वाला होने से इसे 'हेमपुष्पा' भी कहा जाता है ।

महत्त्व- अशोकवाटिका प्राचीन राजाओं के भवन के समीप की विशेष वाटिका कहलाती थी। दिव्यावदानम् के अनुसार सम्राट् अशोक के राजमहल के पास 500 वृक्षों का यह वन था। इसका एक दूसरा नाम प्रमदावन भी था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार लंका में स्थित एक सुंदर उद्यान था, जिसमें रावण ने सीता को बंदी बनाकर रखा था-

अशोकवनिकामध्ये मैथिलीं नीयतामिति।तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता।

सुंदरकांड में अशोकवाटिका का सुंदर वर्णन है-

तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम्।

सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ईहामृगैश्च विविधैर्वृता दृष्टिमनोहरैः।

वीथीः संप्रेक्षमाणश्च मणिकांचनातोरणाम् नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम्।

अशोकवनिकामेव प्राविवशत्संततद्रुमाम्।

दूसरा नकली वृक्ष आम के पत्तों जैसे पत्तों वाला होता है । इसके फूल सफेद पीले रंग के और फल लाल रंग के होते हैं । यह देवदार जाति का वृक्ष होता है । यह दवाई के काम का नहीं होता ।

अध्यात्म-रामायण में भी सीता का अशोकवनिका या अशोकविपिन में रखे जाने का उल्लेख है-

स्वान्तःपुरे रहस्ये तामशोकविपिने क्षिपत्,

राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्धयान्वपालयत्।

वाल्मीकि ने सुंदरकाण्ड में हनुमान द्वारा अशोकवाटिका के उजाड़ जाने का वर्णन है-

इतिनिश्चित्य मनसा वृक्षखंडान्महाबलः,

उत्पाट्याशोकवनिकां निवृक्षामकरोत् क्षणात्।

अशोकवाटिका में हनुमान ने साल, अशोक, चंपक, उद्दालक, नांग, आम्र तथा कपिमुख नामक वृक्षों को देखा था। उन्होंने एक शीशम के वृक्ष पर चढ़ कर प्रथम बार सीता को देखा था-

सुपुष्पिताग्रानरुचिरांस्तरुणांकुरपल्लवान्।

तामारुह्य महावेगः शिंशपापर्णसंवृताम्।

इसी वृक्ष के नीचे उन्होंने सीता से भेंट की थी।

धर्मायण

SksAaikgapiAi.1gkijkrkPk
AirUjAk
अंक : 87
अक्टूबर–मार्च, 2015-16
कार्तिक–चैत्र, 2072

प्रधान सम्पादक
भवनाथ झा

सहायक सम्पादक
श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

अतिथि सम्पादक
श्री मगनदेव नारायण सिंह

महावीर मन्दिर प्रकाशन
के लिए
प्रो. काशीनाथ मिश्र
द्वारा प्रकाशित
तथा
प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित
अक्षर संयोजक दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्क:
धर्मायण,
पाणिनि-परिसर,
बुद्ध-मार्ग,
पटना-800001
दूरभाष – 0612-3223293
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

विषय-सूची

1. **सरस्वती वंदना** –डा. अशोक मिश्र ... 4
2. **रामचरितमानस के प्रथम सम्पादन की विशेषता** –पं. भवनाथ झा ... 5
3. **भारतीय दर्शन में मुक्ति की अवधारणा** –साहित्यवाचस्पति डा. श्रीरंजन सूरिदेव ... 12
4. **अब लौं नसानीं, अब ना नसैहौं।** –श्री सुरेश चन्द्र मिश्र ... 15
5. **भगवानगंज (मसौढ़ी) का द्रोण स्तूप** –श्री मगन देव नारायण सिंह ... 19
6. **साहेब रामदास के रामभक्ति-विषयक पाँच पद** ... 23
7. **पं. रामावतार शर्मा के मारुतिशतकम् के हनुमान्** –प्रो. चन्द्रशेखर द्विवेदी भारद्वाज ... 26
8. **पटना में छठ-पर्व का एक वृत्तान्त** – फेनी पार्क्स, अनु. डॉ. छाया कुमारी ... 30
9. **पाटलिपुत्र की ऐतिहासिक विरासत** – श्री ओम प्रकाश सिन्हा ... 33
10. **रामानुजाचार्य का भक्ति के विकास में योगदान** –श्री युगल किशोर प्रसाद ... 37
11. **राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी** –श्री आलोक कुमार ... 42
12. **'पूषा' रूप में सूर्य** –डा. किरण कुमारी शर्मा ... 45
13. **प्राचीन काल में यज्ञ का महत्त्व** –डा. मोना बाला ... 51
14. **भारतीय ज्योतिष की दृष्टि से नेत्ररोग-विमर्श** –आचार्य राजनाथ झा ... 55

मन्दिर समाचार परिक्रमा
श्रवण कुमार पुरस्कार योजना
अन्य स्थायी स्तम्भ

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोध परक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

पाठकीय प्रतिक्रिया

'धर्मायण' का प्रकाशन हमारी गौरवमयी ज्ञानमयी पावन परम्परा का परिचायक है। आज सामाजिक सद्भाव और सौमनस्य का सेतु बनकर धर्मायण खाईयों को पाट रहा है, दूरियों को मिटा रहा है, सम्प्रति अलगाव को मिटा रहा है। एक ही निवेदन है कि इस पत्रिका को त्रैमासिकी से मासिकी करने का कृपा करें।

रोशनी चाँद से होती है सितारों से नहीं
मुझे प्रेम-प्यार है धर्मायण से है कुछ और से नहीं।

सुसम्पादित पत्रिका धर्मायण बिहार के सांस्कृतिक जीवन का 'अलबम' तो है ही। धर्मायण के प्रधान संपादक ने इस पत्रिका को पाठकों के लिए अत्यंत ही रुचिकर बनाते चले रहे है। अत: उन्हें बहुत-बहुत साधुवाद। धार्मिक फिल्मों का संक्षिप्त इतिहास' धर्म का शून्य स्तर' और 'शास्त्राध्ययन की परम्परा का संरक्षण' जैसे लेख भी पाठकगण को संबल देते रहेगें। पत्रिका को बार-बार 'भक्तिपरक आवरण' बहुत ही प्रशंसनीय और देखने में नयननिराम लग रहे हैं। पत्रिका की सुन्दर प्रस्तुति हेतु 'संपादक-मंडल' को बार-बार धन्यवाद। वस्तुत: धर्म, संस्कृति और साहित्य के राष्ट्रीय चेतना के स्तर पर प्रचार-प्रसार में यह पत्रिका सचेष्ट है। धर्मायण का अबतक 86 अंकों का सफलतापूर्वक प्रकाशन हो चुका है। धर्मायण इसका प्रचार-प्रसार सनातन परम्परानुसार निरन्तर हो यही हमारी कामना है। धर्मायण अंक 86 मुझे प्राप्त हुआ। इसका आवरण पृष्ठ अत्यंत मोहक छपता रहता है। इस अंक में प्रकाशित समादरणीय विद्वानों के लेख विद्वतापूर्ण एवं उपयोगी है। 'धर्म का शून्य स्तर' सच को सामने लाने का कार्य है। इसके लेखक संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में समाहृत है। 'हिन्दी धार्मिक फिल्मों का स्वर्णिम अतीत' में ओम प्रकाश सिन्हा ने देश में धार्मिक फिल्मों पर रोचक जानकारी दी है। खोजी पत्रकार के रूप में लेखक ने धर्मायण के पाठकों तक उपलब्ध कराने के लिए जो मेहनत किया है इसके लिए संपादक एवं लेखक साधुवाद के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त ज्योतिषाचार्य राजनाथ झा-जैसे लेखकों का आलेख नियमित प्रकाशित किया जाये ऐसा संपादक से विनम्र निवेदन वितनी है। धर्मायण के प्रथम पृष्ठ पर

(अंक 86) विषय सूची के सामने इस बार पृष्ठ संख्या प्रकाशित नहीं है। शेष स्तरीय सामग्री पढ़ने को भविष्य में मिलता रहे संपादकजी को कोटिशः नमन।

डा. आनंद माधव उपाध्याय
अवकाश प्राप्त पूर्व विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग)

जनवरी-मार्च अंक का धर्मायण माँ सरस्वती के वरद पुत्र श्री प्रमोद नारायण मिश्र जी नई बाजार मुजफ्फरपुर से प्राप्त हुआ। एक बैठक में ही आद्योपान्त पढ़ डाला। सभी आलेख उत्तम ही नहीं सर्वोत्तम है। "पायस" देवी पूजन में सर्वोत्तम नैवेद्य है इसकी बहुत ही अच्छी जानकारी आपने पाठकों के लिये परोसी है। इस हेतु आपको कोटिशः साूधवाद। "वैराग्य-संदीपनी" के माध्यम से डा. राजेश्वर नारायण सिंह जी ने तुलसी की अंतर्यात्रा को जिस रूप में रेखांकित किया है वह सर्वथा सराहनीय है। डा. मोना बासा का आलेख "रामायण कालीन राज-व्यवस्था" अच्छा लगा। राकेश चन्द्र मिश्र "विराट" का लेख "तुसली का युग बोध एवं सामाजिक सौंदर्य" मेरे दिल के करीब से गुजर गया। मैं भी यही मानता हूँ "सहितं भावं सहित्यम्।" विराटजी को मेरी शुभकामना। प्रो. रामविलास चौधरी जी का लेख "मूर्ख के लक्षण" काफी ज्ञानवर्धक लगा। डा. नीरज कुमार मिश्र का आलेख "अद्भुत है हमारा शरीर" शरीर को स्वस्थ्य रखने संबंधी एक अच्छा लेख है। गर्भस्थ परीक्षित पर भगवान श्रीकृष्ण की कृपा" शीर्षक के माध्यम से डा. जयनंदन पाण्डेयजी द्वारा कही गई श्रीमद्भागवत-पुराण की कथा स्तुत्य एवं श्लाघ्य है। सभी लेखकों को मेरी शतशः शुभकामना। "लेखक से निवेदन" शीर्षक को भी देखा। 2015 ई. से धर्मायण को 15 शीर्षकों में बांटकर पाठकों के बीच परोसा जाना बहुत ही अच्छा रहेगा। मेरी राम में एक संपादकीय शीर्षक भी जोड़े अच्छा रहेगा।-उदय नारायण सिंह, मुजफ्फरपुर।

प्रवचन

परमाचार्य उद्धवदासजी महाराज

''परहित सरिस धरम नहिं भाई।''

दि0 05-12- 08 को महावीर मन्दिर में प्रवचन

गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' में 'धर्म' के विविध स्वरूपों की व्याख्या की है। धर्म को सत्य, अहिंसा, कर्त्तव्य, कुशल आचरण, स्वभाव, रीति-नीति और सबसे बढ़कर परोपकार के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने परोपकार को सबसे बड़ा धर्म बतलाते हुए लिखा- **''परहित सरिस धरम नहिं भाई।''** तुलसी के नायक राम 'धर्मधुरन्धर' हैं यानी धर्म को धारण करने वाले हैं। धर्म की रक्षा के लिए ही उनका अवतार हुआ है- **'धर्म हेतु अवतरेहूँ गोसाईं।'** तुलसीदास के अनुसार जब-जब धर्म की हानि होती है, नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं तब-तब वे कृपानिधि प्रभु अवतार धारण करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का अपना धर्म होता है। पुत्र के लिए पिता की आज्ञा पालन सबसे बड़ा धर्म है, तो पत्नी के लिए तन-मन से पति की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना। 'रामचरितमानस' में पार्वती की माता उनसे कहती हैं- **करेहु सदा संकर पद पूजा । नारि धरम पतिदेव न दूजा ।।** साथ ही साथ उनके लिए सास-ससुर की सेवा करना भी बहुत बड़ा धर्म है। राम सीता से कहते हैं- **एहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सास-ससुर पद पूजा।।**

'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने एक मित्र के बारे में भी वर्णन किया है। उनका कहना है कि एक सच्चे मित्र का यह धर्म है कि वह अपने मित्र को गलत रास्ते से हटाकर सन्मार्ग पर लाये, उसके अवगुण को छिपाकर गुण को प्रकट करे, मित्र के छोटे दुःख को भी बड़ा समझकर उसे दूर करने का प्रयास करे। तुलसी के शब्दों में:- **कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रकटई अवगुनहि दुरावा ।।** उन्होंने एक राजा के धर्म के विषय में भी स्पष्ट कहा है कि राजा अपनी प्रजा के साथ खान-पान भी एक रखे। कहने का अर्थ है कि प्रजा के साथ वह अन्तरंग सम्बन्ध रखे। **मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक। पाले पोसे सकल अंग तुलसी सहित विवेक ।**

नमसा विधेम

सरस्वती वंदना

अशोक मिश्र

हे वीणा वादिनि, हंस वाहिनि
दो सुबुद्धि, गुण-सागर भर दो।

संयम, साहस, शील, विनय का-
बनें जगत् सिरमौर हमीं माँ,
न्याय राह पर चलें सदा हम
पड़े न कीचड़ कभी हमें माँ।

अचल हिमालय-सा दृढ़ गौरव
मनस्विता सद्यः सर्जन दो।
हे वीणावादिनि, हंसवाहिनि
दो सुबुद्धि, गुण-सागर भर दो।

हम संताप हरें अग-जग का-
मन-मलीनता विपुल विश्व का।
सद्गुण करे संचरण सब में
बनें सहारा पुण्य विभव का।

निर्मल हो, अवगुण गुदार कर
चले सुपथ जग, यह शुभ वर दो।
हे वीणा वादिनि, हंस वाहिनि
दो सुबुद्धि गुण-सागर भर दो।

उठा रहा सिर दम्भी निशिचर,
फैल रहा निशि-दिवस अमन हर।
माँ, वह पौरुष दो कि करें कुछ,
मिटे अनय अवसाद प्रबलतर।

फहरे शान्ति पताका अहरह,
ऐसा ही कुछ अद्भुत कर दो।
हे वीणा वादिनि, हंस वाहिनि
दो सुबुद्धि, गुण-सागर भर दो।

शिक्षा की वह ज्योति परम माँ,
दे सकती जो शान्ति सुधा रस।
हृदय बदल सकती विमूढ़ का,
संतत चिंतन प्रेम महा यश।

अपने अमर करों से माता,
मुझमें नव उत्साह अजर दो।
हे वीणा वादिनि, हंस वाहिनि
दो सुबुद्धि, गुण-सागर भर दो।

❑❑

अशोक मिश्र
प्राचार्य
डी.ए.बी. पब्लिक स्कूल
केन्द्रीय कर्मशाला
जयन्त परियोजना, एन.सी.एल.
सिंगरौली (म.प्र.)

रामचरितमानस के प्रथम सम्पादन की विशेषता

(सुन्दरकाण्ड के सन्दर्भ में)

भवनाथ झा

बहुत कम पाठकों को यह विदित है कि गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस के प्रथम सम्पादक, हिन्दी के आदि गद्यकार, पं. सदल मिश्र थे। उनके द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ कलकत्ता से 1810 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह एक हस्तलिखित प्रकाशन था, जिसमें लीथो प्रिंटिंग की तकनीक अपनायी गयी थी। बहुत कम संख्या में छपाई के कारण कम समय में ही यह अनुपलब्ध हो गया। पं. श्यामसुन्दर दास ने नागरी प्रचारणी सभा, बनारस से रामचरितमानस का सम्पादन करते समय भूमिका में इस संस्करण का उल्लेख किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसका उल्लेख मात्र किया है। इतना ही नहीं, 1895 में अडविन ग्रीब्स ने जब Notes on the grammar of the Ramayan of Tulsi Das लिखा तो अपने विवेचन के लिए आधार-ग्रन्थ के रूप में उन्हें बम्बई से मुद्रित कई संस्करण उपलब्ध हुए थे। इन संस्करणों के सम्बन्ध में ग्रीब्स का कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अपनी पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं कि बम्बई से मुद्रित अनेक सुन्दर संस्करण मुझे मिले, पर शुद्धता की दृष्टि से वे बहुत निम्न कोटि के हैं। उन्होंने मुंशी नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित प्रति का उपयोग किया तथा इसके अतिरिक्त निम्नलिखित तीन संकरणों से भी सहायता लेने की बात स्वीकार की है।

1. पं. राम जस द्वारा सम्पादित तथा बनारस से 1883 ई. में प्रकाशित प्रति।
2. बाबू विशेशर प्रसाद के प्रेस से 1887 में प्रकाशित तुलसीदास-ग्रन्थावली।
3. खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना से 1889 में प्रकाशित रामचरितमानस की प्रति।

इस प्रकार, एडबिन ग्रीव्स को भी यह प्रति उपलब्ध नहीं हुई थी। फलतः हिन्दी साहित्य के लिए यह संस्करण गुमनाम हो गया। वर्तमान में Bibliotheca Regia Monacensi, जर्मनी में संकलित रामचरितमानस की इस प्रति का डिजिटाइजेशन हुआ ओर नेट के माध्यम से यह उपलब्ध हुआ है, तब इसकी विशेषताओं का अध्ययन सम्भव हो सका है। हमने इस प्रति का उपयोग कर सुन्दरकाण्ड सम्पादन में किया है। इस क्रम में हमने पाया कि गीता प्रेस की प्रति, एवं नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित प्रति की अपेक्षा इसका पाठ अधिक संगत है और तुलसी साहित्य की मूल भावना के अधिक निकट है। इस आलेख में सुन्दरकाण्ड के सन्दर्भ में गीता-प्रेस की प्रति, नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित अखिल भारतीय विक्रम परिषद् की प्रति के साथ इस प्रति का पाठालोचन प्रस्तुत है।

पं. सदल मिश्र ने इस सम्पादन के लिए किस पाण्डुलिपि को आधार के रूप में व्यवहार किया है, उसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। वे इस ग्रन्थ के आरम्भ में अपनी उक्ति के रूप में केवल तिथि की चर्चा इस प्रकार करते हैं-

शाके नेत्राग्निशैलद्विजपतिमिलिते मासि मार्गे दशम्यां
पारावारर्तुनामक्षितिभिरुपयुते वैक्रमेब्दे सितायाम्।
वस्तीरामं प्रवीणं प्रबलमतियुतं दर्शयित्वाङ्कयच्छ्री-
बाबूरामो विपश्चिन्निखिलगुणमिदं पुस्तकं साधुप्रीत्यै।।

श्रीमत्सदलमिश्रेण ज्ञात्वा वाचः सुपर्वणाम्।
शुद्धीकृतमिदं सर्वं यथोचितमतन्द्रिणा।।

अर्थात् शाके 1732 एवं 1867 विक्रम संवत् में अगहन मास, शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अत्यधिक बुद्धिमान् एवं कुशल वस्तीराम को दिखाकर विद्वान् बाबूराम ने सभी गुणों से भरे इस पुस्तक को सज्जनों की प्रसन्नता के लिए मुद्रित कराया। सावधान होकर श्रीमान् सदल मिश्र ने देवताओं की वाणी को जानकर आदि से अन्ततक इसे शुद्ध किया।

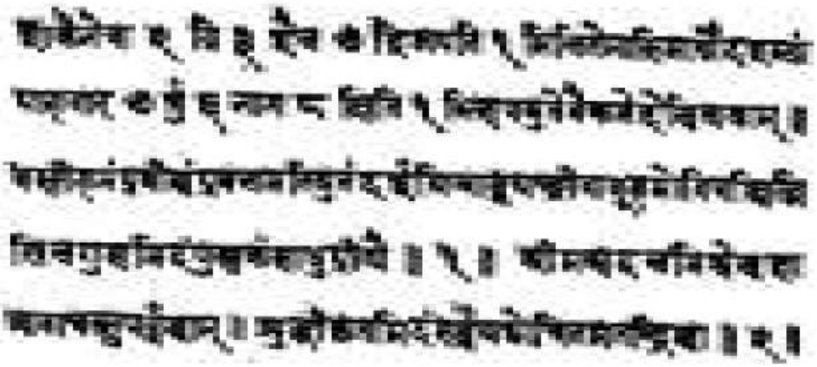

आरा के मिश्रटोला मुहल्ला में सन् 1767 में पं. सदल मिश्र का जन्म हुआ था। उन्होंने लगभग 25 वर्षो तक फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता में हिन्दी के प्राध्यापक तथा लेखक के रूप में अपनी सेवा दी। इसी अवधि में उन्होंने हिन्दी की खडी बोली के विकास में अपना योगदान किया। जॉन गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में यह कार्य करने के क्रम में इन्होंने नासिकेतोपाख्यान, अध्यात्मरामायण का अनुवाद किया तथा रामचरितमानस का सम्पादन किया। हिंदी और फारसी की शब्दसूची तैयार करने पर भी इन्होंने पुरस्कार प्राप्त किया। इन प्रारंभिक गद्य लेखकों में मिश्र जी की भाषा खड़ी बोली के विशेष अनुरूप सिद्ध हुई, यद्यपि वह बिहारी भाषा से प्रभावित है। सदल मिश्र का प्रयास इसलिये विशेष अभिनंदनीय है कि उनमें खड़ी बोली के अनुरूप गद्य लिखने और भाषा को व्यवहारोपयोगी बनाने का प्रयास विशेष लक्षित होता है। पं. सदल मिश्र सीधे-सादे स्वभाव के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। अंग्रेजों के निरंतर संपर्क में रहते हुए भी अपने खानपान और रहनसहन में आप कट्टर परंपरावादी थे। वे जीवन भर स्वयंपाकी रहे। किसी के हाथ का भोजन तो क्या, जल भी ग्रहण नहीं किया। फोर्ट विलियम कालेज की नियुक्ति के पूर्व वे प्रायः कथावाचन का कार्य करते थे। पटना में कथावाचन करते समय उनका कुछ अंग्रेज अधिकारियों से परिचय हुआ, जिनके प्रभाव से उनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कालेज में हुई। वे नंदमणि मिश्र के पुत्र तथा लक्ष्मण मिश्र के प्रपौत्र थे। बदल मिश्र और सीताराम मिश्र उनके दो भाई थे। अपने भाइयों के पुत्रों से ही आगे इनका वंश चला। वे निस्संतान थे। इनका देहावसान 1847-48 ई0 के लगभग 80 वर्ष की अवस्था में हुआ।

अब यहाँ कुछ पाठालोचन प्रस्तुत है। यहाँ सन्दर्भ के लिए गीता प्रेस का पाठ लिया गया है। इसके बाद गीताप्रेस का पाठ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित अखिल भारतीय विक्रम परिषद् का पाठ तथा नागरी प्रचारिणी सभा का पाठ दिया गया है। अन्त में सदल मिश्र का पाठ देकर पाठालोचना की गयी है।

१. सन्दर्भ - किष्किन्धाकाण्ड, दोहा संख्या ३० क ।

गीता प्रेस- **सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **सिद्ध करहिँ त्रिसिरारि।।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।।**

सदल मिश्र का पाठ- **सिद्ध करहिं त्रिपुरारि।।**

यहाँ 'त्रिसिरारि' से राम का अर्थ अभीष्ट है, किन्तु 'त्रिपुरारि' से महादेव का अर्थ है। यहाँ दो दोहे हैं, जिनमें से प्रथम दोहा में महादेव के द्वारा रघुनाथ कीर्तन सुननेवालों को फल देने की बात कहने के बाद दूसरे दोहे में श्रीराम का पुनः वर्णन अधिक संगत प्रतीत होता है।

२. सन्दर्भ - सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३ का छन्द।

गीता प्रेस- **चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **चउहट्ट, हट्ट, सुबट्ट, बीथी,**

नागरी प्रचारिणीसभा- **चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी**

सदल मिश्र का पाठ- **चउहट्ट दहदिस सुभग बीथी**

यहाँ सदल मिश्र के पाठ में चौराहे और उसकी दशो दिशाओं में सुन्दर गलियों का उल्लेख है। यहाँ पुनरुक्ति नहीं है अपितु सम्बद्ध चित्रण है, जिससे एक चित्र खिंच जाता है, किन्तु अन्य पाठों में चौहट्ट (चौराहा) के साथ साथ हट्ट (बाजार) फिर सुबट्ट (सुन्दर रास्ते) तथा बीथी (बाजार की गलियाँ) एक ही दृश्य को बार बार संकेतित करती है। साथ ही, यहाँ ललित वर्णन के क्रम में कठोर वर्णों का बार-बार प्रयोग रस की निष्पत्ति में बाधक है। इसके स्थान पर सदल मिश्र के पाठ में 'दह दिस' और 'सुभग' के प्रयोग से लालित्य का बोध होता है।

३. सन्दर्भ - सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३ का छन्द।

गीता प्रेस- **एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुएक है कही ।।**
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहि सही ।।

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **ऐहि लागि तुलसीदास इनकी कथा कछु-ऐक है कही ।।**
रघुबीर सर तीरथ, सरीरनि, त्यागि गति पैहहिँ सही ।।

नागरी प्रचारिणीसभा- **एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुअेक है कही।**
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहि सही।।

सदल मिश्र का पाठ- **एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा संछेपहि कही।।**
रघुबीर शर तीरथ सरित तनु त्यागि गति पैहैं सही।।

यहाँ 'कछुएक' शब्द से अनिश्चितता का बोध होता है। किन्तु संक्षेप में कथा कहने की बात से कथा की विशालता ध्वनित होती है, जो श्रीराम के गौरव के अधिक अनुकूल है। दूसरी पंक्ति में रघुवीर का शर उपमान है और तीर्थ उपमेय है। तीर्थ अचलता का बोधक है जबकि शर गतिशीलता का, अतः दोनों में उपमानोपमेय भाव के परिपाक में वैपरीत्य गुण के कारण बाधा होती है। किन्तु पं. मिश्र के पाठ में तीर्थवाला सरित उपमेय है, जिससे गतिशीलता की ध्वनि निकलती है, अतः पं. मिश्र का पाठ श्रेष्ठ है।

४. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या १० अद्धार्ली संख्या ६।

गीता प्रेस- **सीतल निसित बहसि बर धारा।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **सीतल, निसित, बहसि बर धारा।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **सीतल निसि तव असि बर धारा।**

सदल मिश्र का पाठ- **सीतल निशं तव असिवर धारा।**

यहाँ गीता प्रेस के पाठ में 'बहसि' शब्द का प्रयोग संस्कृत के क्रियापद का प्रयोग है, जो धारण करने के अर्थ में मानकर तलवार में तेज धार धारण करने का अर्थ निकाला जाता है, लेकिन 'वहसि' क्रिया का प्रयोग संस्कृत में भी स्वगुणातिरिक्त वस्तु को वहन करने के अर्थ में होता है, जैसे ''वहसि वपुषि वसनं जलदाभं'' (गीतगोविन्द- जयदेव), ''भारं वहति गर्दभी'' आदि। किन्तु यहाँ धार तो तलवार का गुण ही है, तलवार तभी सार्थक है जब उसमें धार हो, अन्यथा वह तुच्छ लोहा है। इसे अलग से ढोने की आवश्यकता नहीं है, अतः 'वहसि' का प्रयोग अनुचित है। नागरी प्रचारिणी सभा का पाठ और पं. मिश्र का पाठ अर्थ की दृष्टि से समान है।

५. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या १२ अद्धार्ली संख्या ६।

गीता प्रेस- **निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **निसि न अनल मिल, सुनु सुकुमारी।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।**

सदल मिश्र का पाठ- **निंशि न अनल मिलु राजकुमारी।**

यह सीता के प्रति त्रिजटा का कथन है। इसके पूर्व चौपाई में त्रिजटा के द्वारा श्रीराम के प्रताप-वर्णन का प्रसंग है। इस प्रसंग में सीता को सुकुमारी कहना एक सामान्य कथन है, इसमें ठगने का भाव प्रकट होता है, सीता की कोमलता का लाभ उठाकर छल करने का भाव प्रकट होता है, किन्तु 'राजकुमारी' शब्द के प्रयोग से यह भाव ध्वनित है कि मैं आपकी अनुचरी हूँ, मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य हूँ, आपकी आज्ञा अमोघ है, किन्तु विवश हूँ, क्योंकि रात को अग्नि नहीं मिलेगी। यहाँ त्रिजटा की सीता-भक्ति तथा सीता की गरिमा प्रकट होती है, जो तुलसीदास की भाव-कल्पना के अधिक निकट तथा मूलध्वनि के अनुकूल है।

६. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३५ अद्धार्ली संख्या १०।

गीता प्रेस- **डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **डगमगाहिँ दिग्गज, चिक्करहिँ।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।**

सदल मिश्र का पाठ- **डगमग महि दिग्गज चिक्करहीं।**

यहाँ प्रथम तीनों पाठों में 'डगमगाहिं' का कर्ता अस्पष्ट है। यदि दिग्गज को ही चिक्कार एवं डगमग करनेवाला कर्ता मान लिया जाये तो यह कविसमय (कवियों में प्रचलित मान्यताएँ) के अनुकूल नहीं है। दिग्गज का चीत्कार सर्वत्र वर्णित है। साथ ही, यहाँ चौपाई की अन्तिम पंक्ति का भाव लेकर तुलसीदास ने अग्रिम छन्द का आरम्भ किया है, जिसमें स्पष्ट है- 'चिक्करहिं दिग्गज डोल महि।' अतः ऊपर चौपाई

में भी डगमग करने अर्थात् डोलने का कर्ता 'मही' होना चाहिए। अतः पं. मिश्र का पाठ अधिक स्पष्ट तथा उपयुक्त है।

७. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३५ छन्द की प्रथम पंक्ति।

गीता प्रेस- **गिरि लोल सागर खरभरे।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **गिरि लोल, सागर खरभरे।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **गिरि लोल सागर खरभरे।**

सदल मिश्र का पाठ- **गिरि कोल सागर खरभरे।**

प्रथम दोनों पाठों में गिरि का लोल अर्थात् चंचल होना अभिप्रेत है, किन्तु 'गिरि' शब्द से अटलता का बोध होता है, इसकी चंचलता कविसमय के अनुकूल नहीं है, किन्तु पं. मिश्र के पाठ में गिरि में कोल होना अर्थात् दरार पड़ना अधिक स्वाभाविक वर्णन है। पृथ्वी के डोलने से पहाड़ में दरार पड़ना अधिक स्वाभाविक वर्णन है।

८. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३७ ।

गीता प्रेस- **प्रिय बोलहिं भय आस।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **प्रिय बोलहिँ भय-आस।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **प्रिय बोलहिं भय आस।**

सदल मिश्र का पाठ- **बोलहिं प्रिय प्रभु त्रास।**

यहाँ प्रथम दो पाठों में अर्थ अस्पष्ट है। अतः गीता प्रेस के अनुवादक ने इसका अनुवाद किया है- "ये तीन यदि (अप्रसन्नताके) भय या (लाभकी) आशासे (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं),....।" अर्थानुसंधान में इस द्रविड प्राणायाम का कारण है कि भय की आशा नहीं होती है, बल्कि आशंका होती है। किन्तु 'प्रभु त्रास' पाठ से सारे संदेह दूर हो जाते हैं।

९. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ३९ अद्धार्ली ४।

गीता प्रेस- **जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **जनरंजन, भंजन-खल-ब्राता। बेद-धरम-रच्छक, सुनु भ्राता।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।**

सदल मिश्र का पाठ- **जनरञ्जन गञ्जन खल भ्राता। वेद धर्म रक्षक सुरत्राता।**

यहाँ प्रथम दो पाठों में 'भंजन खल ब्राता' अंश का अर्थ होगा कि खल और व्रात्यों का भंजन करनेवाले। यहाँ 'खल का भंजन करना' तो संगत भी है किन्तु 'व्रात्यों का भंजन' असंगत है, क्योंकि वैदिक धर्म में 'व्रात्य' शब्द से चार प्रकार के लोगों का बोध होता है आचारभ्रष्ट, नीच कर्म करनेवाले जातिबहिष्कृत, और जिनकी जननेंद्रियों की शक्ति नष्ट हो गयी हो। श्रीराम तो ऐसे दीन-हीनों का उद्धार करनेवाले हैं, इनका भंजन करनेवाले नहीं। अतः 'गंजन खल ब्राता' का व्यवहार गोस्वामीजी नहीं कर सकते हैं। पं. मिश्र के पाठ में अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है कि हे भ्राता रावण, श्रीराम सज्जन लोगों का रंजन करते हैं और खलों का गंजन करते हैं, वे वेद और धर्म के रक्षक हैं तथा देवताओं की भी रक्षा करनेवाले हैं।

१०. सन्दर्भ- सुन्दरकाण्ड, दोहा संख्या ५९ अद्धार्ली ८।

गीता प्रेस- **ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **ढोल गवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।**

सदल मिश्र का पाठ- **ढोल गंवार क्षुद्र पशुमारी। ये सब ताडन के अधिकारी।।**

यह तुलसी-साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद पंक्ति है, जिसके आधार पर तुलसीदास पर अनेक प्रकार के आरोप लगे हैं। किन्तु यहाँ स्पष्ट है कि ये आरोप अपपाठों के कारण हैं। पं. सदल मिश्रजी के में शूद्र और नारी शब्द हैं हीं नहीं। वस्तुत: तुलसीदास ने नीच व्यक्ति के अर्थ में छुद्र शब्द का प्रयोग किया होगा। पं. मिश्र ने इस मूल अर्थ को सुरक्षित रखते हुए इसे क्षुद्र मानकर पाठ दिया, किन्तु दूसरे लिपिकार ने इसे शूद्र मानकर सूद्र कर दिया। इसी प्रकार मूल पाठ 'पसुमारी' (पशुओं को मारनेवाला- हत्यारा) को पशु और नारी कर दिया गया। इन अपपाठों के कारण गोस्वामी तुलसीदास पर अनेक प्रकार के आक्षेप किये गये हैं, किन्तु अब सही पाठ सामने आने पर इन आक्षेपों का अन्त हो जाना चाहिए। यहाँ प्रमाण के लिए पं. मिश्र के पाठ का संगत अंश प्रस्तुत है।

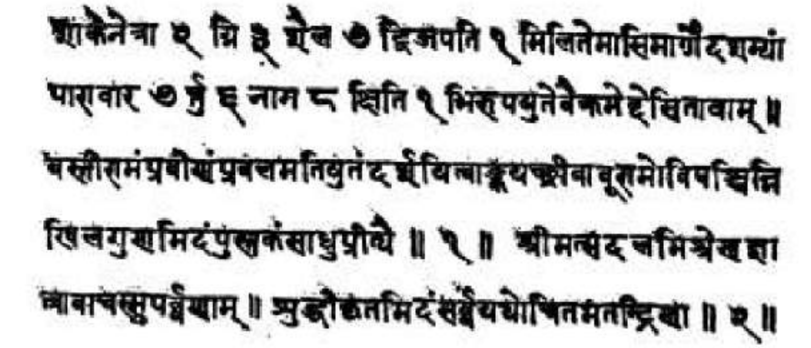
शाकेनेत्रा २ ग्नि ३ शैल ७ द्विजपति १ मिलितेमासिमार्गे दशम्यां
पारावार ७ र्तु ६ नाग ८ क्षिति १ भिरुपयुतेवैक्रमेद्वेसितायाम् ॥
बल्लीरामंप्रबोधंप्रवचमतिसुतंदर्शयित्वाक्षयश्रीवाबूरामोविपश्चित्त्रि
खिलगुणमिदंपुस्तकंसाधुप्रीत्यै ॥ १ ॥ श्रीमत्सदलमिश्रेण सा
मानावस्तुपर्व्वयाम् ॥ शुद्धीकृतमिदंसर्व्वैर्यथोचितमतन्द्रिणा ॥ २ ॥

११. सन्दर्भ- सुन्दर काण्ड, दोहा संख्या ६० के पहले का छन्द।

गीता प्रेस- **तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना।**

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्- **तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना।**

नागरी प्रचारिणीसभा- **तजि सकल आस-भरोस, गावहि, सुनहि, संतत, सठ मना।**

सदल मिश्र का पाठ- **तजि सकल आश भरोस गावहिं सुनहिं सज्जन शुचि मना।**

यहाँ प्रथम दो पाठों में सामान्य अर्थ है कि गोस्वामीजी सभी आशा और भरोसा छोड़कर गाते हैं और शठ लोग हमेशा सुनते हैं। यह सामान्य अर्थ बिल्कुल असंगत है, क्योंकि 'शठ' (दुर्जन) लोग भला तुलसीदास की वाणी क्यों सुनेंगे। अत: गीताप्रेस के अनुवादक ने इसका अर्थ लगाने में भी द्रविड-प्राणायाम किया है- "अरे मूर्ख मन! तू संसार का सब आशा भरोसा त्यागकर निरन्तर इन्हें गा और सुन।" हलाँकि 'सुनहि' शब्द के प्रयोग के कारण 'शठ' को संबोधन नहीं माना जा सकता। पं. मिश्र के पाठ में 'शठ' के स्थान पर 'शुचि' शब्द है। वस्तुत: प्राचीन नागरी में च एवं ठ अक्षर समान रूप से लिखे जाते हैं। अत: यहाँ 'शुचि' के स्थान पर 'सठ' शब्द का भ्रम हुआ, फलत: ऐसा अपपाठ पाठकों के सामने आया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पं. सदल मिश्र का पाठ गोस्वामी तुलसीदास की उदार भावना के निकट है। हमें तुलसी साहित्य पर विचार करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि गोस्वामीजी संस्कृत के प्रकाण्ड अध्येता रहे हैं। अत: उन्होंने संस्कृत काव्य परम्परा के कविसमयों की अवहेलना न की होगी।

फिर भी, पं. मिश्र के सम्पादन में अवधी की प्रकृति के विपरीत संस्कृतनिष्ठता है। इसका कारण यह हो सकता है कि फोर्ट विलियम कालेज की समिति के द्वारा खड़ी बोली की शैली विकसित करने के क्रम में वे जनभाषा में वर्तनी की विविधता को मिटाकर मानकीकरण के क्रम में वर्तनी के स्तर पर

संस्कृतीकरण का प्रयास किया हो, जिसके कारण अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग उन्होंने तत्सम के रूप में किया हो।

अतः इस सम्पादन में यदि कोई कमजोर पक्ष है तो केवल वर्तनी के स्तर पर। अवधी में श, ण, क्ष, आदि का प्रयोग नहीं होता है, इसे ध्यान में रखकर यदि केवल वर्ण के स्तर पर हम अवधी की प्रकृति के अनुकूल इसे कर देते हैं, तो इसे रामचरितमानस का सबसे प्रामाणिक पाठ माना जा सकता है। हलाँकि पं. मिश्र ने अपने सम्पादन के क्रम में आधार पाण्डुलिपि का विवरण नहीं दिया है। उन्होंने 1808 ई. के आसपास इसका कलकत्ता में इसका सम्पादन था। अधिक सम्भावना है कि बंगला लिपि की कोई प्राचीन पाण्डुलिपि को उपयोग आधार के रूप में किया गया हो।

इतना होने के बादजूद पं. मिश्र के पाठ को एक आदर्श सम्पादन के रूप में माना जा सकता है। महावीर मन्दिर के द्वारा संक्षिप्त मारुति-स्तुति के सातवें संस्करण में सुन्दरकाण्ड का यही पाठ प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें भी वर्तनी के स्तर पर अवधी भाषा के अनुकूल परिवर्तन किये गये हैं, किन्तु शब्द योजना और अन्य वैशिष्ट्य पं. मिश्र के सम्पादन से हू-बहू दिये जा रहे है। हमें विश्वास है कि यह संस्करण सुन्दरकाण्ड का सुन्दर संस्करण होगा और आप सब इसमें अपनी अपार श्रद्धा देकर प्रकाशन को कृतार्थ करेंगे।

❖

लेखकों से निवेदन

2015 ई. से धर्मायण को अपने नये रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। अगले अंक से शोधपरक आलेख के साथ पाठकों द्वारा मिले सुझावों के अनुरूप कुछ स्थायी-स्तम्भ भी प्रकाशित किये जायेंगे। इन स्थायी-स्तम्भों का स्वरूप इस प्रकार है:

1. **नमसा विधेम**- संस्कृत के श्लोकों में देवस्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित, अप्रकाशित 2. **देवस्तुति**- हिन्दी में छन्दोबद्ध प्राचीन अथवा आधुनिक भक्तिपरक कविताएँ। 3. **शोधपरक आलेख** 4. **प्रेरक-पुरुष**। सन्तों, महापुरुषों की जीवनी। 5. **प्रेरक-प्रसंग** 6. **अलौकिक अनुभूति** 7. **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। आयुर्वेद से घरेलू नुस्खे 8. **ज्योतिष-चर्चा** 9. **आस्था के केन्द्र** 10. **संस्कृत भाषा-परिचय** 11. **धार्मिक शंका-समाधान** 12. **धार्मिक पुस्तक समीक्षा** 13. **धरोहर** 14. **पाठकीय प्रतिक्रिया** 15. **तीर्थयात्रा-वृत्तान्त**।

अत: सुधी लेखकों से निवेदन है कि उक्त स्तम्भों के लिए अपने मौलिक तथा अप्रकाशित अप्रसारित आलेख हमें प्रेषित करें। रचनाओं की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। आपकी रचनाओं में राजनीति की कोई बात नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सद्भाव, धाार्मिक उदारता, भारतीय गरिमामयी संस्कृति आदि की झलक हमारी पत्रिका की पहचान है। टंकित या हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार्य हैं। टंकित आलेख mahavirmandir@gmail.com पर भेज सकते हैं। लेखक अपना फोटो एवं साहित्यिक परिचय अवश्य भेजें। यदि आलेख में कोई फोटो डाला गया हो तो उसका .jpg फाइल ईमेल से अवश्य भेजें। रचनाओं के लिए मन्दिर की ओर से सम्मानकी की व्यवस्था है। अपना पत्राचार पता अवश्य लिखें।

इनके अतिरिक्त 'धर्मायण' के पाठक नियमित रूप से **महावीर मन्दिर समाचार परिक्रमा** से भी अवगत होते रहेंगे।

भारतीय दर्शन में मुक्ति की अवधारणा

हिन्दी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत जैन-साहित्य के विश्रुत विद्वान्, लेखक एवं सम्पादक।

साहित्यवाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

भारतीय दर्शन में पुनर्जन्म तथा संसार की दु:खमयता की अवधारणा के कारण पुनर्जन्म से निवृत्ति की भी अवधारणा प्रस्फुटित हुई है, जिसे मुक्ति कहा गया है। जिसके बाद पुनर्जन्म नहीं होता है। इस अवस्था को पाने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों में तथा दर्शन की धाराओं में विभिन्न प्रकार के उपाय कहे गये हैं। साथ ही मुक्ति के स्वरूप का भी विवेचन अलग अलग रूप में कि गया है। इसके बावजूद हम उनमें एकता की झलक पाते हैं। इसी विषय पर बहुश्रुत विद्वान् विद्यावाचस्पति श्रीरंजन सूरिदेव का यह आलेख प्रकाश डालता है।

समग्र सांसारिक दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति को मुक्ति कहा गया है। भारतीय दर्शन और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के विविध साधन-मार्गों में मुक्ति या मोक्ष की कल्पना विभिन्न रूपों में की गई है। सबसे सीधी एवं सरल कल्पना नितान्त भौतिकवादी चार्वाक-दर्शन में की गई है। इसमें भी अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों के समान ही आत्यन्तिक दु:ख-निवृत्ति को मुक्ति माना गया है। परन्तु मानव-शरीर को ही दु:ख का कारण मानते हुए चार्वाकवादियों ने मरण को ही अपवर्ग अथवा मुक्ति कहा है- **'मरणमेवापवर्ग:।'** ऐसा इसलिए कहा है कि शरीर से भिन्न कोई सत्ता नहीं है। शरीर का विनाश होते ही सभी दु:खों का विनाश हो जाता है।

जैन-दर्शन में कर्म के आत्यन्तिक क्षय को ही मुक्ति या मोक्ष माना गया है। मोक्ष प्राप्त कर लेने पर जीवन अनन्त-चतुष्टय अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त श्रद्धा और अनन्त शान्ति को सद्य: उपलब्ध करके अपने शुद्ध यानी कर्ममल के कंलक से रहित नैसर्गिक, स्वरूप में आ जाता है। जैन-दर्शन 'जीवनन्मुक्ति' में विश्वास करता है, यानी पृथ्वी पर सशरीर जीवित रहने की अवस्था में ही मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति हो सकती है।

बौद्ध-दर्शन में भी केवल आत्यन्तिक दु:ख निवृत्ति को निर्वाण या मोक्ष कहा गया है। निर्वाण या मोक्ष परमसुख की अवस्था है- 'निव्वाणं परमं सुखं।' भगवान् बुद्ध ने दु:ख-निरोध नाम से अपने चार आर्य सत्यों में मुक्ति को सम्मिलित किया है। उनका सिद्धान्त वाक्य है- आर्य-आष्टांगिक मार्ग के आचरण से प्रज्ञा उत्पन्न होते ही सद्य:निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसमें मनोमय शरीर का निर्वाण हो जाता है तथा दिव्य श्रोत्र, दिव्य चक्षु पूर्वजन्म-स्मरण (जैनमत से अवधि-ज्ञान), परचित्तज्ञान और ऋद्धियों की उपलब्धि हो जाती है। फलस्वरूप, दु:ख के विनाश का अनुभव हो जाता है। इससे चित्त में अज्ञान का प्रवेश नहीं होता तथा जन्म लेने तथा भोग भोगने की इच्छा से सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है। यही बौद्ध निर्वाण का तात्त्विक रूप है।

बुद्ध भगवान् के निर्वाणोत्तर बौद्ध धर्म में अनेक दार्शनिक वाद उत्पन्न हो गये, जिनमें निर्वाण की विभिन्न कल्पनाएँ की गईं हैं। वैभासिक मत में, जिनका सम्बन्ध हीनयान- सम्प्रदाय से है, निर्वाण दो प्रकार का होता है- सोपाधि-शेष तथा निरुपाधि शेष। सोपाधि-शेष जीवन्मुक्ति की स्थिति है और निरुपाधि-शेष विदेहमुक्ति की। यही मत प्राचीन मत है।

जैन-दर्शन में भी सदेहमुक्ति और विदेह मुक्ति की परिकल्पना की गई है। बौद्ध महायान-सम्प्रदाय प्रवृत्ति-प्रधान और भक्तिवाद को माननेवाला सम्प्रदाय है। अपने विकास-क्रम में महायान की परिणति क्रमशः मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान में होती गई और इन सब में निर्वाण-सुख की अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक परिकल्पनाएँ की गईं। किन्तु हीनयान ही मूल यान है।

वैदिक-दर्शन में न्यायदर्शन दुःख से अत्यन्त विमोक्ष को अपवर्ग कहता है। प्राप्त जन्म का विनाश तथा भविष्य जन्म का न होना ही मुक्ति या आत्यन्तिक विनाश है। मुक्त आत्मा अपने नौ गुण-विशेष-बुद्धि, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म तथा संस्कार से छुटकारा पा जाती है।

नैयायिकों का माना है कि मुक्तात्मा में सुखानुभूति का भी अभाव हो जाता है। यानी, सुख-दुःख में समभाव की स्थिति रहती है। सुख का राग से अनिवार्य सम्बन्ध है, और राग बन्धन का कारण है। अतः मोक्षदशा में सुख की विद्यमानता नहीं होती।

मुक्ति या निःश्रेयस् दो प्रकार की है- परामुक्ति और अपरा मुक्ति। आत्मतत्त्व की प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है। किन्तु तब भी प्रारब्ध कर्म शेष रह जाता है। प्रारब्ध कर्म के सर्वथा लोप हो जाने पर ही मुक्ति या परनिःश्रेयस् की उपलब्धि हो सकती है।

वैशेषिक-दर्शन में भी न्यायदर्शन की भाँति दुःख की अत्यन्त निवृत्ति तथा आत्मा-गत गुण विशेष का उच्छेद ही मुक्ति है। यद्यपि आत्मा-गत सुख या आनन्द की बात वैशेषिक-दर्शन नहीं करता।

सांख्य-दर्शन के अनुसार दुःख प्रकृतिजन्य है। पुरुष स्वभावतः मुक्त और निरासक्त होता है। परन्तु अविवेक के कारण प्रकृति के साथ उसका संयोग होता है, जिससे दुःख की छाया या प्रतिच्छाया उसपर पड़ती है। इसी कारण वह संसारिक दुःख भोग भोगने को विवश होता है।

सांख्य-दर्शन के अनुसार ही प्रकृति से वियुक्त होकर पुरुष का एकाकी हो जाना ही मोक्ष या कैवल्य है। एक मात्रता ही कैवल्य है- 'केवलस्य भावः कैवल्यम्।' वस्तुतः, बन्धन और मुक्ति दोनों ही प्रकृति-धर्म हैं। पुरुष इस धर्म से परे रहता है। पुरुष के मोक्ष का तात्पर्य है कि प्रकृतिगत प्रतिबिम्ब रूप मिथ्या दुःख का नाश तब होता है, जब विवेक द्वारा यह जान लिया जाता है कि मैं (पुरुष) अमरणशील, अपरिवर्तनशील नित्य शुद्ध-बुद्ध और सत्यस्वरूप हूँ।

सांख्यदर्शन के अनुसार भी मुक्ति दो प्रकार की होती है- जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति। जीवन्मुक्ति की स्थिति में पुरुष प्रकृति से विमुक्त हो जाने पर भी ठीक उसी प्रकार प्रारब्ध कर्म में संलग्न रहता है, जिस प्रकार कुम्हार का चाक बरतन बनाकर उतार लेने के बाद भी कुछ देर तक घूमता रहता है।

परन्तु विदेहमुक्ति में तापत्रय (आध्यात्मिक, अधिदैविक, आधिभौतिक) का विनाश शरीर का नाश होने पर ही सम्भव है। सुख और दुःख सापेक्षिक शब्द है। अतः मुक्ति में दुःख की तरह सुखानुभूति का अभाव स्वीकार्य है। इस सम्बन्ध में सांख्यदर्शन और न्यायदर्शन में समरूपता है।

योगदर्शन में भी सांख्यदर्शन के समान ही मोक्ष को 'कैवल्य' नाम से अभिहित किया गया है। जैसा पहले कहा गया, कैवल्य का अर्थ है- केवल या एकाकी या एकमात्रता की स्थिति। यहाँ सांख्य की

प्रकृति के स्थान पर बुद्धि या बोध से पुरुष के सम्बन्ध विच्छेद को अपेक्षित माना गया है। ऐसी स्थिति में ही पुरुष चित् में प्रतिष्ठित होकर कैवल्य-लाभ करता है।

मीमांसा-दर्शन में मोक्ष पर अधिक सूक्ष्मता से बहुमुखी विचार किया गया है। एक मत है कि दृश्य जगत् के साथ आत्म का सम्बन्ध न रहना ही मोक्ष या मुक्ति है। मुक्ति या छुटकारा-जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा- 'मोचनं मुक्तिः।' मुच् धातु से निष्पन्न क्तिन् प्रत्यय के योग से 'मुक्ति' शब्द निष्पन्न होता है।

जीव, भोक्ता शरीर, भोग-साधन, इन्द्रिय और भोग-विषय, पदार्थ, इस त्रिविध बन्धन में बँधा रहता है। इस बन्धन का पूर्णत: या आत्यन्तिक विनाश ही मोक्ष है। मुक्तावस्था में परमानन्द की अनुभूति होती है। एकमत यह भी है, मुक्तावस्था में आनन्द की अनुभूति अवश्य होती है, पर बाह्य पदार्थों से सम्बन्ध न रहने से बाह्य सुख की अनुभूति का सर्वथा अभाव रहता है। दूसरा मत यह है कि मुक्तावस्था मे सुख का भी आत्यन्तिक विलय हो जाता है। आत्मा को प्रिय-अप्रिय या हर्ष-शोक का स्पर्श नहीं होता।

अद्वैत-वेदान्त के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक है। आत्मैक्य-ज्ञान उत्पन्न होते ही सद्य: आनन्द की अनुभूति होने लगती है। वैष्णव भक्ति धर्म पाञ्चरात्र के अनुसार ब्रह्म भावापत्ति, यानी जीव-ब्रह्म का एकाकार होकर नि:शेष आनन्द का उपयोग करना ही मोक्ष है। ऐसे मोक्ष की स्थिति में जीव इस मर्त्त्यलोक में कभी नहीं लौटता- 'यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।' अर्थात् भगवान् कहते हैं- जहाँ जाकर मर्त्यलोक में कभी लौटना नहीं होता, वही मेरा परम धाम है।

अद्वैतवादी शंकराचार्य जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं; अर्थात् मुक्तावस्था में जीवन ब्रह्म के साथ मिलकर एकाकार हो जाता है। ब्रह्म से जीव की भिन्न सत्ता नहीं रहती- 'जीवो ब्रह्मैव नापर:' रामानुजाचार्य विदेहमुक्ति मानते हैं। उनके मत से वैकुण्ठ में भगवान् का दासत्व ही परम मुक्ति है। द्वैतवादी माध्व मत में भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा और उनसे प्रेम करने के फल स्वरूप प्रकृति या अविद्या के बन्धन से छूटने को मुक्ति माना गया है।

द्वैताद्वैतवादी निम्बार्काचार्य के मतानुसार मुक्ति दो प्रकार की है- क्रममुक्ति तथा सद्योमुक्ति। निष्काम कर्मयुक्त विधि-निषेध का पालन करते हुए जीव को अर्चन-वन्दन आदि के द्वारा जो मुक्ति प्राप्त होती है, वह क्रममुक्ति है। इससे भिन्न श्रवण, स्मरण आदि के द्वारा जिन जीवों को संसार के बन्धन से छुटकारा मिल जाता है, वह सद्योमुक्ति है।

चैतन्य के गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में भी जड़ माया से मुक्त होकर ब्रह्मसायुज्य या कैवल्य मुक्ति की परिकल्पना की गई है। और फिर, भक्ति के द्वारा स्वरूपाभाव से वैकुण्ठ एवं भगवान् के गोलोक की प्राप्ति बताई गई है। कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध हरिवंशी (राधावल्लभीय) और हरिदासी (सखी) सम्प्रदायों में सिद्धान्त निरूपण कम हुआ है, फिर भी हितहरिवंश का मुक्ति के सम्बन्ध में यह विचार है कि जब जीव की द्वैतदृष्टि नष्ट हो जाती है और वह हित (प्रेम) रूप से अद्वय-भाव प्राप्त कर लेता है, तब वह नित्य वृन्दावन विहार का आनन्द-लाभ करता है और स्वयं आनन्दमय हो जाता है। यही आनन्दमयता ही प्रेमभक्ति है और इसी के माध्यम से मुक्ति को वह अधिगत कर लेता है।

मुक्ति, कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण और नि:श्रेयस् से सम्बन्ध उपर्युक्त विचारों का विवेचन मुक्ति प्रधान भक्तिकाव्य से सम्बद्ध भारतीय दर्शन के अध्ययन के लिए निस्सन्देह परम उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अब लौं नसानीं, अब ना नसैहौं।

श्री सुरेश चन्द्र मिश्र

मनुष्य अपने जीवन में अनेक प्रकार की गलतियाँ करता है, किन्तु सबसे उत्तम स्थिति है कि वह इन गलतियों से सीखे और आगे कम से कम उस प्रकार की गलती को न दुहराये। यह आदर्श स्थिति है। इसी भाव को प्रेषित करती हुई तुलसीदास की पंक्ति है:- **अब लौं नसानी अब ना नसैहों।** इसके अनेक उदाहरणों से हमारी परम्परा भरी हुई है। हिन्दी एवं मगही के साहित्यकार, कवि श्री सुरेशचन्द्र मिश्र ने इसी भाव पर धारावाहिक कथाओं का लेखन किया है, जिन्हें अपने वर्तमान स्वरूप में बोधकथा कहा जा सकता है। ऐसी एक बोधकथा यहाँ धर्मायण के पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

मानव जीवन विचित्रताओं से भरा हुआ है। मनुष्य चाहता कुछ है, और होता कुछ है। यह लीला हम-आप के अन्दाज़ से परे है। पर हाँ, इतना तो अवश्य लगता है कि निश्चित ऐसी कोई अदृश्य शक्ति है, जो हम-आप के चाहे विना भी कुछ अचिन्त्य कर दिया करती है। और जब अनचाही वस्तु सामने आती है तो 'ईश्वरेच्छा प्रबला' मानकर ही हमें संतोष करना पड़ता है।

आज के हजारो साल पहले, इस देश भारत में एक ऐसे ही बालक का जन्म हुआ था, जिसपर माता-पिता, जनता-जनार्दन, देश-दुनियाँ की नज़र जिस रूप में लगी थी, बाद चलकर कुछ दूसरे रूप में दिखाई पड़ा। वह बालक कोई और नही, महाराज शुद्धोधन का पुत्र सिद्धार्थ था, जो बाद चलकर 'गौतम बुद्ध' के नाम से ख्यात हुआ। माँता का नाम 'माया देवी' था, लेकिन तत्काल ही माता का देहान्त हो जाने के कारण शुद्धोधन की दूसरी पत्नी नन्द-जननी महाप्रजावती के हाथो बालक पाला-पोसा गया। कहा जाता है कि माया देवी जब गर्भवती थी तब एक दिन वह अपनी सखियों के राथ अपना बगीचा लुम्बिनी घूमने के लिए गई, और वहीं उसने इस अमूल्य पुत्र-रत्न को जन्म दिया। बालक जन्म के साथ ही सात डेग चला और उसने कहा- ''मेरा इस पृथ्वी पर यह अन्तिम जन्म है, मैं बोधि प्राप्त करूँगा और व्याधि-जरा-मरण से संसार के प्राणियों को मुक्ति दिलाने का उपाय ढूढ़ूँगा।''

राजा सिद्धार्थ पुत्र-प्राप्ति की खबर पाकर बड़े प्रसन्न हुए और तत्काल अपने प्रसिद्ध ज्योतिषी को बुलाया। ज्योतिषी ने गणना कर भविष्यवाणी की- ''बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या संन्यासी होगा।'' उसी समय 'असित' नामका वृद्ध ब्रह्मज्ञानी भी आया, और आँखों में आँसू भरकर बोला- ''जब यह बालक बड़ा होगा, तब मैं संसार से चला जाऊँगा। किन्तु, उसके ज्ञान से जो धर्म की नदी बहेगी, सारा संसार उसका जल पीकर अपनी प्यास शान्त करेगा। यह धर्मराज बुद्ध बनकर जगत् के बन्धनों को काटेगा। उसने ही उस पुत्र का नाम 'सर्वार्थ-सिद्धि' रखा।

राजा को गणक की इस भविष्यवाणी पर एक साथ ही हर्ष और शोक दोनों हुए।

धीरे-धीरे बालक चन्द्रमा की कला की तरह बढ़ने लगा। राजा ने बालक की पढ़ाई तथा शस्त्रादि सीखने का उचित प्रबन्ध कर दिया। इनके बचपन का नाम सर्वार्थ-सिद्धि, शौद्धोदनि, गौतम, शाक्य आदि था।

यों, गौतम ने कम ही समय में अस्त्र-शस्त्रादि विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर ली, पर उनका मन उसमें रमता न देखकर पिता शुद्धोधन के मन में उनके विवाह की बात बड़ी तीव्रता से घर कर ली। उन्हें बार-बार चिन्ता हो रही थी कि गौतम को शीघ्र संसारी बनाया जाय। इसके लिए उन्होंने योग्य कन्या की तलाश शुरू कर दी। देवदह की राजकुमारी 'यशोधरा' को उन्होंने हर प्रकार से वधू के उपयुक्त समझकर गौतम का विवाह यशोधरा से कर दिया। कुछ दिन बाद 'राहुल' का जन्म हुआ। राजा अतिशय प्रसन्न हुए। चारो ओर खुशियाली छा गई। बाजे-गाजे बजे। विप्रों, गरीब-दुखियों को मुँह माँगा दान दिए गये; पर राजा का दिल हमेशा खटकता रहा। बार-बार उन्हें ज्योतिषी के वचनों का ध्यान आता रहा। राजा सतर्क रहे। उन्होंने गौतम के वास-स्थान में ही वे सारे प्रबन्ध कर दिये, जिससे उन्हें कभी बाहर जाने की आवश्यकता न हो। यहाँ तक कि सभी ऋतुओं के साधन, रंग-राग, भोग-विलास की सुविधाएँ उन्हें वहीं उपलब्ध करा दी गईं।

एक दिन गौतम को घूमने की इच्छा हुई। राजा से आज्ञा ले वे रथ पर सवार हो सेवक छन्दक के साथ घूमने निकल पड़े। गौतम जिन-जिन चीजों को देखते, सब के बारे में छंदक से उत्सुकता से पूछते जाते। अचानक उनकी नज़र एक बेतरह खाँसते, छाती की हड्डियाँ गिनने योग्य निकलीं, कराहते एक व्यक्ति पर पड़ी।

गौतम ने छंदक से पूछा- यह ऐसा क्यों दिख रहा है?

- 'कुमार, यह रोगी है।' छंदक ने कहा

- क्या, रोग इसी को होता है या सब को?

- सब को।

- क्या, मुझको और मेरी यशोधरा को भी?

- हाँ कुमार, आपको और आपकी यशोधरा को भी।

गौतम का मुँह मलिन हो गया। गौतम ने अपना रथ लौटा लिया। तब से वे उखड़े-उखड़े-से रहने लगे।

एक दिन पुनः उन्हें घूमने की इच्छा हुई और वे छंदक के साथ पुनः निकल पड़े। संयोग कुछ ऐसा कि आज फिर गौतम की नज़र लाठी का सहारा लिये, धीरे-धीरे चलते, कमर झुके एक व्यक्ति पर पड़ी। गौतम ने जिज्ञासापूर्वक छंदक से फिर पूछा- ''यह कौन है?''

छंदक ने कहा- ''यह एक बूढ़ा आदमी है।''

गौतम ने फिर पूछा, ''क्या यही ऐसा है, या सब ऐसा होगा?''

- ''सब ऐसा होगा''- छंदक ने कहा।

- ''क्या मेरी यशोधरा भी?''

-हाँ। राजकुमार गौतम इस दृश्य को देख कर अत्यन्त खिन्न हो गए और कुछ सोचते हुए फिर वहीं से लौट गए।

अब अपने प्रासाद में आकर कुमार बड़ा अन्यमनस्क-से रहने लगे। उन्हें संसार बड़ा असार-सा लगने लगा। पिता उनकी यह स्थिति देखकर बड़े सशंकित हो गये। उन्होंने प्रासाद में ही उनके लिए और उत्तम प्रबंध कर दिया। पर, अब भी वे सदा खिन्न ही रहते।

अचानक, एक दिन पुनः उन्होंने घूमने का मन बनाया। छंदक ने आज्ञा पा रथ तैयार किया और चल पड़ा। छंदक ने सोचा, आज कोलाहल से दूर इन्हें वन प्रदेश की ओर ले चलता हूँ, जहाँ लोगों का आना-जाना कम हो, और सर्वत्र आनन्दमयी वन

की शोभा ही दीख पड़े। छंदक को यह आभास हो गया था कि शायद कुमार का मन रोगियों-वृद्धों को देखकर दयार्द्र हो, अशांत हो गया है; क्योंकि, कुमार का यह प्रश्न कि "मेरी यशोधरा भी ऐसा हो जाएगी"? छंदक के कानों में बार-बार गूँजता और भय उत्पन्न करता था।

रथ आज नगर के कोलाहल से दूर जा रहा था, जहाँ सर्वत्र मन को खींच लेनेवाली शोभा थी और पवित्र प्राकृतिक पवन की मंद-मंद गति थी। कुमार का मन प्रसन्न-सा लग रहा था। कुछ दूर गये ही थे कि उनकी नज़र कुछ लोगों पर पड़ी, जिनमें चार लोग मिलकर कंधे पर एक लाश को ढ़ोए जा रहे थे। फूल- मालाएँ चढ़ीं थीं। धूप -अगरु जल रहे थे; पर पीछे-पीछे दस-बीस लोग रोते, छाती पीटते भी जा रहे थे। कुमार ने जब यह देखा तो बड़े विस्मित रह गए।

कुमार ने पुनः छंदक से पूछा- छंदक, यह सोया क्यों है, क्यों लोग रो रहे हैं?

छंदक उत्तर देने में संकोच कर रहा था। फिर कुछ विचारते हुए उसने कहा- कुमार, यह शव है। 'शव' शब्द सुनते ही अब गौतम की ओर से प्रश्नों की झड़ी लग गई। लोग रो क्यों रहे हैं, यह कब उठेगा, लोग इसे कंधे पर क्यो ले जा रहे हैं?-आदि-आदि।

छंदक ने कहा- कुमार, यह व्यक्ति मृतक है। यह अब कभी नहीं उठेगा।

कुमार ने फिर पूछा- इसे लोग कहाँ लिए जा रहे हैं?

छंदक ने जबाब देते हुए कहा- कुमार, लोग इसे पवित्र भूमि पर ले जाकर जला देगें। कुमार, छंदक के इस उत्तर से चौंक गए।

कुमार ने फिर पूछा- क्या, यही व्यक्ति मरता है या और लोग भी मरते हैं?

छंदक ने कहा- सभी लोग मरते हैं।

- क्या, मेरी यशोधरा भी?

- हाँ, कुमार।

कुमार ने आज फिर रथ लौटा लेने की आज्ञा दी।कहते हैं, होनी को कोई रोक नहीं सकता, बल्कि होनी के अनुकूल परिस्थितियाँ स्वतःसृजित होने लगतीं हैं। कहा भी गया है-

अवश्यमभाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलण्ठस्य महाहिशयनं हरेः।

और भी-

स्वयं महेशः श्वसुरो नगेशः सखा धनेशः तनयो गणेशः।

तथापि भिक्षाटनमेव शम्भोर्बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।।

कुमार गौतम, अपने प्रासाद में आकर अत्यन्त उद्विग्न हो गये। उनकी आँखों के आगे बीमारी, बुढा़पा और मृत्यु के भयानक दृश्य एक पर एक, आकर चोट करने लगे। न दिन सोते न रात, मन अछोर तक अशांत रहता। संसार की असारता देख मन में अनेक संकल्प-विकल्प घुमड़ते रहते।

इसी बीच उन्हें राहुल नामक एक पुत्र भी हो चुका था। राजा शुद्धोधन उनकी ओर से थोड़ा निश्चिन्त हो चुके थे। राहुल के उत्पन्न होने से उन्हें विश्वास हो गया था कि गौतम संसारी हो चुके हैं।

पर, "मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखम् न च सुखम्।" की उक्ति शतशः सत्य है। उन्हें (गौतम को) रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर जितनी चिन्ता हुई थी, संन्यासी को देखकर उतना ही संतोष भी हुआ था।

बस क्या था, संकल्प जो़र मारने लगे। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु से विश्व को त्राण दिलाने हेतु एक रात गौतम, सोए यशोधरा-राहुल को छोड़ कर अपने प्रासाद से बाहर निकल गए। छंदक को बुलाया और कंथक(अश्व) को तैयार करने को कहा। दोनो निकल पड़े। अंधेरी रात थी, रास्ता नहीं सूझता था, कंथक बढ़ना नहीं चाहता था, फिर भी दोनो बढ़े जा रहे थे। कंथक बार-बार हिनहिना

रहा था, मानो कोई अनिष्ट होनेवाला हो। छंदक बार-बार कह रहा था, ''कुमार, अब लौट चलिए।''

पर कुमार लौटने का नाम ही नही लेते।

रात प्रायः बीत चुकी थी। सूर्योदय होनेवाला था। रथ भार्गव आश्रत के पास पहुँच चुका था। पास ही निरंजना नदी बह रही थी। रथ रुक गया और गौतम उतर गये। गौतम ने घोड़े की पीट थपथाई और स्नेह से स्पर्श करते हुए छंदक सारथी से कहा, ''हे छंदक, तुमने मेरे प्रति जो भक्ति दिखाई है, उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब तुम घोड़े को लेकर लौट जाओ।''इतना कहकर उसने अपने सभी आभूषण खोलकर देते हुए छंदक से कहा, ''हे छंदक, यह मणि देकर राजा से मेरा प्रणाम कहना और कहना कि वे मेरे लिए शोक न करें। मैंने मोक्ष प्राप्त करने के लिए घर छोड़ा है। संसार में धन के दायाद बहुत हैं, पर धर्म के दायाद दुर्लभ हैं। इतना सुनकर कंथक रोने लगा।उसने कहा- आपके विना नगर में जाने पर राजा मुझसे क्या कहेंगें। कुमार ने सारथी से कहा- यह शोक छोड़ो। देहधारियों का वियोग निश्चय है। यदि स्नहेवश मैं स्वजनों को नहीं भी छोड़ूँ, तो मृत्यु हम दोनों को अवश्य ही अलग कर देगी। इतना कह उसने धीरे से म्यान से तलवार निकाली और अपने घुंघराले केशों को काटकर कंथक को देते हुए कहा, ''कंथक, ये केश यशोधरा को अत्यन्त प्रिय थे; उन्हें दे देना।''

ठीक उसी समय एक वनेचर पास से गुज़र रहा था; उससे गेरुए वस्त्र माँग कर पहन लिया। उसके बाद रोते हुए छंदक को विदा कर उसने भार्गव ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया। सच है-

निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीस्समाविषतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

वस्तुतः नीति-निपुण धीर व्यक्ति निन्दा-स्तुति की परवाह किये विना ही अपने संकल्पित मार्ग पर निर्भीक बढ़ चलते हैं। प्रचण्ड अवरोध-विरोध उन्हें डिगा नहीं सकते। अपनी पूर्व की बातों, चरितों को अपनी भूल समझकर उन्हें ष्ठीवन (थूक) की तरह त्याग देते हैं। उनके मन में एक ही बात रहती है-

अब लौं नसानीं अब ना नसैहौं।

❖

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा।।

(व्यास-स्मृति के नाम पर प्रचलित)

सैकड़ों में एक शूर होते हैं, हजारों में पण्डित, दशो हजार में एक वक्ता होते हैं और दाता तो होते हैं या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

भगवानगंज का द्रोण स्तूप

मगन देव नारायण सिंह

"महापरिनिर्वाण सूत्र" के अनुसार भगवान् बुद्ध ने जब परिनिर्वाण प्राप्त किया, तब बर्मीज क्रोनिकल के अनुसार 'दौना' नामक एक ब्राह्मण, जो वेठदीप का निवासी था; को बुद्ध के अन्तिम संस्कार करने का सम्मान दिया गया। जब भगवान् बुद्ध का शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया गया, तब उनके अस्थि अवशेषों को निम्नलिखित नौ दावेदार अपने-अपने अधिकार में लेना चाहते थे :-

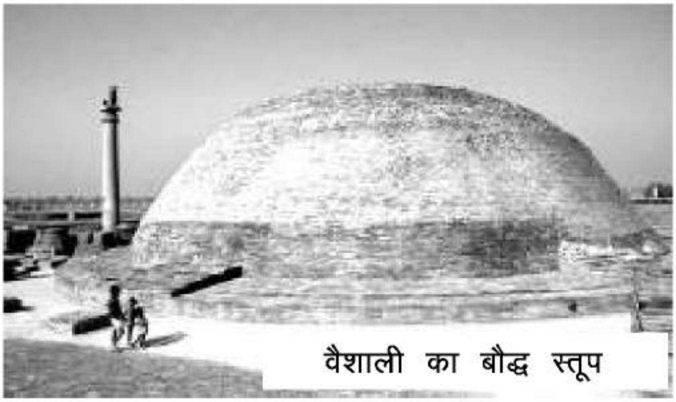

वैशाली का बौद्ध स्तूप

(क) राजगृह के राजा अजातशत्रु,
(ख) कपिलवस्तु के शाक्य,
(ग) रामग्राम के कोलिया,
(घ) पावा के मल,
(ड.) अलकप्पा के वुली,
(च) वैशाली के लिच्छवी
(छ) वैठदीप के ब्राह्मण,
(ज) कुशीनारा के मल्ल
(झ) पिपलीवन के मौरिया

राजगीर स्तूप

उपर वर्णित सभी दावेदार भगवान् बुद्ध के अंतिम संस्कार में भाग लेने आये थे, और जैसा बताया गया है, भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष को अपने अधिकार में करना चाहते थे। अस्थि अवशेष के लिये वे युद्ध करने को भी तैयार थे। ब्राह्मण 'दौना' ने उन राजाओं के बीच मध्यस्थता की और उन सबको बुद्ध के अस्थि अवशेष बराबर-बराबर हिस्सों में प्राप्त करने को राजी कर लिया। अस्थि अवशेष को नौ दावेदारों में बाँटकर, जिस पात्र से अस्थि विभाजन किया था, ब्राह्मण 'दौना'(द्रोण- बुद्धचरित के अनुसार) ने अपने पास रख लिया। सभी दावेदार ने अपने-अपने स्थान पर लौट कर अपने पराक्रम के अनुसार 'पवित्र अस्थि अवशेष पर स्तूप' का निर्माण किया। ब्राह्मण दौना ने भी अपने स्थान पर 'पवित्र अस्थि अवशेष स्तूप'

का निर्माण किया जिसे इतिहासकारों ने 'द्रोण स्तूप' की संज्ञा दी। यह स्तूप उस पात्र और बँटवारे से बचे अस्थि अवशेष पर बना। कई इतिहासकारों ने इसे 'कुम्भ स्तूप' या 'गोल्डेन पिचर' स्तूप की संज्ञा दी है।

पवित्र अस्थि अवशेष स्तूपों की पहचान

उपर्युक्त पवित्र स्मारक स्तूपों में केवल निम्नलिखित स्तूपों की पहचान इतिहासकारों और पुरातत्त्व के विद्वानों के द्वारा की जा सकी। बाकी के स्तूप अभी भी इतिहास के पन्नों या धरती के गर्भ में हैं।

पहचान किये गये स्थान और उनके नाम इस प्रकार हैं :-

(क) अजातशत्रु के द्वारा बनाया गया स्मारक स्तूप - राजगृह

(ख) कपिलवस्तु के शाक्यों द्वारा बनाया गया स्मारक स्तूप - कपिलवस्तु

(ग) रामग्राम के कोलियो द्वारा बनाया गया स्मारक स्तूप - नंदनगढ़-लौरिया

(घ) लिच्छवियों द्वारा बनाया स्मारक स्तूप - वैशाली

(ड़) कुशीनारा के मल्लों द्वारा बनाया गया स्मारक स्तूप - कसिया

शेष स्तूप अभी भी अज्ञात हैं।

भारत की सांस्कृतिक धरोहरों की खोज के लिये हम जेनरल कनिंघम और यूरोपिन पुरातत्त्व विद्वानों के आभारी हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस सन्दर्भ में शायद ही कोई सार्थक कोशिश की गई हैं; क्योंकि जब भी कोई नया तथ्य सामने आता है, तो इतिहासकारों के आपसी विवाद में घिर जाता है, और नयी खोज पुन: अपने अतीत में खो जाती है।

कपिलवस्तु स्तूप

मैनुअल ऑफ बुद्धिज्म (शेन्स हार्डी, पृ. 351) तथा अश्वघोष के बुद्धचरित के अनुसार (अ 22। 83) जो स्तूप ब्राह्मण ने पात्र के उपर बनाया था, वह 'गोल्डेन पिचर स्तूप' या द्रोण स्तूप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शब्द द्रोण का संबंध पिंग से है जिसका अर्थ घड़ा (पिचर) या वेस (vase) से है। इतिहासकार जूलियन ने अपनी टिप्पणी में लिखा है कि 'द्रोण' शब्द क्षमता का साधारण माप है, अत: वह पिंग या नाप कर्म से सम्बन्धित है, लेकिन इसका मतलब भी पात्र ही है और ब्राह्मण 'दौना' के पात्र से सम्बन्ध रखता है, जिसके ऊपर पवित्र द्रोण स्तूप का निर्माण हुआ था। जेनरल कनिंघम ने भी 'द्रोण' को माप की इकाई की ही संज्ञा दी है। (पृ. 442, भारत का प्राचीनतम भूगोल) ।

द्रोण स्तूप - ह्वेनसांग के मार्ग सूचक वर्णन में

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत का भ्रमण 629 ई. से लेकर 645 ई. तक किया था। उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में 'द्रोण स्तूप' का वर्णन किया है। यह इतिहास में प्राचीनतम उपलब्ध वर्णन है। मार्ग सूचक वर्णन के अनुसार वह भारत के उत्तर पश्चिमी देशों से होते हुए काबुल आया, और तक्षशिला में कई महीने

बौद्ध-शास्त्रों के अध्ययन में बिताया। वहाँ से प्रसिद्ध किला सांगला (सियालकोट) होते हुए 635 ई में सतलज को पार किया और गंगा के मैदान में कन्नौज, कौशाम्बी, अयोध्या, श्रावस्ती आदि स्थानों का भ्रमण करके कपिलवस्तु की यात्रा की, फिर सारनाथ वापस आया।

कपिलवस्तु स्तूप

सारनाथ से ह्वेनसांग ने पूरब की यात्रा शुरू की और लगभग 50 मील की दूरी तय कर गरजपतीपुरा (गाजीपुर) शहर पहुँचा। उसके बाद 100 ली यानी तकरीबन 17 मील पूरब की यात्रा की और एक स्थान पर पहुँचा, जिसे इतिहासकारों ने बलिया के निकट पहचाना है। (जेनरल कनिंघम ने 1 ली को 1079.12 फीट माना है)। यहाँ से चीनी यात्री गंगा को पार कर 'मो-हो-सो-लो' नामक शहर पहुँचा। जब इस आश्रय स्तूप से ह्वेनसांग द्वारा दी गयी दूरी और दिशा पर विचार किया गया तो द्रोण स्तूप का स्थान भरतपुरा के आसपास के क्षेत्र में सुनिश्चित हुआ होता है।

नन्दनगढ़ लौरिया स्तूप

अब यदि सोन नदी, पहले बतायी गयी धारा में भगवान् बुद्ध के निर्वाण के समय बहती थी, तो इस समय (वेगलर के अनुसंधान के समय) भी बौद्ध स्थानों के अवशेष वर्तमान होंगे। इस तथ्य को निश्चित करने के लिये भरतपुरा और इसके आसपास के गाँवों को ध्यानपूर्वक जाँच की गयी तो परिश्रम शीघ्र ही फलित हुआ और मुझे भगवानगंज में 'द्रोण स्तूप' मिल गया।

कुशीनगर स्तूप

भगवानगंज का यह स्तूप 35 से 40 फीट के व्यास में बना है और लगभग 20 फीट ऊँचा है। उसका आकार वृत्तीय है और उसे 14"x 12" की ईटों को क्षैतिज अवस्था में अच्छी तरह सुर्खी, चूना, छोआ और कत्था से जोड़ा गया है। स्तूप के ऊपर के भाग में एक वर्गाकार छिद्र है जिसके उपर कभी छतरी लगायी जाती रही होगी। इसके अंश दृष्टिगोचर होते हैं और इसकी माप 18 इंच वर्गाकार है।

ईटों के आकार तथा जेनरल कनिंघम के नियमानुसार (जो कि उन्होंने स्तूप के निर्धारण के लिये बनाया है और जो स्तूप के आकार, ऊँचाई और व्यास पर निर्भर है) इसमें संदेह नहीं है कि यह स्तूप एक ऐसा प्राचीन स्तूप है जिसकी खोज अबतक नहीं हुई है।

इसलिये इस स्तूप की पहचान द्रोण स्तूप के नाम से करते हैं जिसे ब्राह्मण दौना या द्रोण ने भगवान् बुद्ध के पवित्र अस्थि अवशेष के बाँटनेवाले दोना पर स्तूप का निर्माण किया था। जैसा कि गाँव का नाम है, यह नाम स्तूप के नाम के समान ही पुराना है और इस स्तूप का निर्माण ईसा पूर्व छठी शताब्दी में किया गया प्रतीत होता है।

द्रोण स्तूप की वर्तमान अवस्था

जे. डी. एम वेगलर की असामयिक मृत्यु और उनके सारनाथ और बोधगया मंदिर के जीर्णोद्धार में व्यस्तता के कारण, शायद उनका ध्यान द्रोण स्तूप से हट गया होगा। उनकी मृत्यु के बाद जेनरल कनिंघम ने उनके सभी संग्रहों को बाद मे प्रकाशित किया। ऐतिहासिक द्रोण स्तूप भी इसी कारण इतिहास के पन्नों में लुप्त हो गया और आज तक विद्वानों, इतिहासकारों और अन्वेषको की वाट जोह रहा है।

वर्तमान में द्रोण स्तूप समय के थपेरों और भूकंप के कारण जीर्ण अवस्था में एक भग्नावशेष टीला मात्र बनकर रह गया है। संयोग से भारतीय सांस्कृतिक संपदा संरक्षण समिति के दल में समिति के अध्यक्ष श्री विनोद कृष्ण कानोड़िया, उपाध्यक्ष द्वय ले० कर्नल उमेश प्रसाद और डा० प्रकाश चरण प्रसाद (पूर्व निदेशक पुरातत्त्व विभाग, बिहार सरकार) तथा सचिव श्री मगन देव नारायण सिंह (वरिष्ठ पत्रकार) को लुप्त द्रोण स्तूप को फिर से उजागर करने में सफलता मिली है। गाँव भगवानगंज का प्राचीन महत्त्व था क्योंकि यह प्राचीन उत्तरापथ, जिसका वर्णन महाभारत और अथर्ववेद में है, उस पर अवस्थित था। प्रारंभिक सेक्रपिग से डा० प्रकाश ने जो स्तूप की बाहरी दिवाल और सूर्खी चूना से निर्मित प्रदक्षिणा निकाली है वह डा० जे. डी. एम. वेगलर के वर्णन के ही अनुरूप है।

याद रहे कि यह स्तूप किसी निजी व्यक्ति द्वारा बनाया गया था, इसलिये यह न तो बहुत मनोरम और न तो काफी बड़ा है। इसकी सादगी और ह्वेनत्सांग के वर्णन में चुप्पी इस बात की धारणा को प्रमाणित करती है कि इस स्तूप में कोई विशेष बाहरी आकर्षण नहीं था कि टिप्पणी करने योग्य हो। जैसा कि यह एक ब्राह्मण द्वारा बनाया गया था, इससे सम्भवत: यह प्रतीत होता है कि इस स्तूप का नाम ब्राह्मण से ही संबंधित होगा।

बिहार की राजधानी पटना से दक्षिण मात्र 35.40 कि. मी. की दूरी पर जहानाबाद जिले के मसौढ़ी में स्थित भगवानगंज के पास-पड़ोस के गाँव नदौन, कुम्भवन इस बात का प्रतीक है। यह क्षेत्र प्राचीन सोन की धारा पर बसा है और इनकी उचित खोज से ऐसे कई ऐतिहासिक प्रमाण मिलेंगे जिससे प्राचीन इतिहास और बिहार के सांस्कृतिक धरोहरों से पर्दा हटेगा।

❑

साहेब रामदास के रामभक्ति-विषयक पाँच पद

बिहार की सन्त परम्परा में साहेब रामदास का स्थान अन्यतम है। वर्तमान पचाढी मठ के ये संस्थापक हैं। इनकी भक्तिपरक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। 1901 ई में चन्दा झा ने पचाढी के महन्त वंशीदासजी के सान्निध्य में इनकी रचनाओं का संकलन किया था, जिनके आधार पर चन्दा झा इनका काल 1746 ई मानते हैं। इस प्रकार ये महाराज नरेन्द्र सिंह के शासनकाल में हुए थे। चन्दा झा के शब्दों में-

शिवलोचन मुख शिव सन जखन, साहेब रामदास तिथि तखन।
प्रबल नरेन्द्र सिंह मिथिलेश, शासित छल भल तिर्हुत देश।।

अर्थात् शिवलोचन 3, शिवमुख 5 एवं शिव 11 (1153 साल) यानी 1746 ई में नरेन्द्र सिंह के शासन काल में तिरहुत देश में साहेब रामदास का जन्म हुआ था।

छादन मूल में उत्पन्न साहेब रामदास कुसुमौल गाँव वर्तमान जरैल के निवासी थे। गार्हस्थ्य जीवन में इनका नाम साहेब राम झा था तथा इनके छोटे भाई का नाम कुनाराम झा था। कहा जाता है कि लगभग 50 वर्ष की अवस्था में अपने प्रिय पुत्र प्रीतम के निधन के कारण ये वैरागी हो गये और केओटी गाँव के निवासी बलिराम दास से दीक्षा ली। कहा जाता है कि ये दण्डप्रणाम करते हुए जगन्नाथ पुरी तक गये थे। इसका विवरण इनके एक पद से मिलता है-

साधुके संगत धरि गुरुक चरण धरि,
आहे सजनी हमहु जाएब जगरनाथहि रे की।
नहि केओ अन्नदाता संग नहि सहोदर भ्राता,
आहे सजनी माँगि भीखि दिवस गमाएब रे की।
सभ जग भेल भाला गुरुआ अठारह नाला,
आहे सजनी ओहिठाम केओ नहि छोड़ाओल रे की।
सिंह दरबाजा देखि मन मोर लुबधल,
आहे सजनी ओहिठाम पंडा पंडा बेंत बजारल रे की।
साहेब जे गुनि धुनि बैसलहुँ सिर धुनि,
आहे सजनी जगत जीवन निअराएल रे की।

इन्होंने अनेक स्थानों पर अपनी साधना की। ये स्वयं को साहेब खबास (भगवान् के नौकर) कहते थे। अत: मिथिला में अनेक गाँव में साहेबराम या साहेब खबास का थान है, जहाँ पाकड़ के पेड़ अभी भी मौजूद हैं जहाँ गाँव के लोग विशेष अवसरों पर दूध चढाने आते हैं। ऐसा ही एक थान इन पंक्तियों के लेखक के गाँव हटाढ़ रुपौली में भी मौजूद है।

इन्होंने पचाढी में मठ की स्थापना की तथा साहेब रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। चन्दा झा द्वारा संकलित पदावली में इनके 478 गीतों का संकलन है।

साहेब रामदास मुख्यत: रामानन्द की परम्परा के साधु थे। इनकी शिष्य-परम्परा में महात्मा मनोहर दास द्वारा स्थापित समस्तीपुर के गाहर स्थान की शिष्य-परम्परा के सन्त दयाराम दास भक्तमाली द्वारा लिखित पुस्तक **राम-रटन** की भूमिका में इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार दी गयी है-

1. श्री रामानन्द स्वामी
2. श्री सुरसुरानन्द
3. केवलानन्द
4. श्री विमलानन्द
5. श्री सुधीरानन्द
6. श्री भवानन्द
7. श्री अनभयानन्द
8. श्री रमता राम
9. काशीराम
10. भगवान दास
11. श्री तन्दु दास
12. अमृत दास
13. बलराम दास
14. साहेबरामदास

यद्यपि साहेब रामदास चतुर्भुजी परम्परा के उपासक थे। इनकी अधिकांश रचनाएँ कृष्णभक्तिपरक हैं, किन्तु इन्होंने द्विभुजी परम्परा में श्रीराम-भक्तिशाखा के अनुरूप कुछ रचनाएँ की हैं। यहाँ 'धर्मायण' के पाठकों के लिए इनकी पाँच रचनाएँ इसी राम-रटन पुस्तक से साभार उद्धृत है। इस राम-रटन पुस्तक का प्रकाशन 1965 ई. में हुआ था।

(1)

भजु, मन! राम-भजन प्यारा।।ध्रु0।।
आवा-गमन कबहुँ नहिं होइहैं अघ कटबे को है आरा।
पिअत-अघात अभर हो जैहों अजब अमी के है धारा।।
सकल असार सार नहि देखा राम-नाम त्रिभुवन सारा।
नैया चढ़े सुमरि जन 'साहेब' खोबिहें सोइ जेहि सिर भारा।।

(2)

राम भजन सुमिरन को दिल में आठ पहर झड़ी लागी है।
काम-क्रोध-लोभ ओ तृष्णा-दुर्मति भागी है।।
कायापुर हरिनाम नगारा बजत अनन्द बधाई है।
अष्ट कमल के कुंजगली मे मुरली श्याम सुनाई है।।
मनको ममिता सुनि-सुनि निकली सुरति चरण लपटाता है।
राज करत राजा-घर बैठे निश्चल राज बसाता है।।
पाँचों परजा निशिदिन ठाढ़े कर जोरि शीश नवाता है।
गुरु बलिराम चरण धरि माथे 'साहेब' हरि अपनाया है।
अब तो जरा-मरण छुटि जइहें संशय सकल मेटाया है।।

(3)

तैं तों राम शरणमा धरहुँ मानहुँ वचन हमारी।
जे जन गहे शरण रघुवर डगरे ध्रुव पाये पद भारी।।
बरनि न जाय विपति प्रह्लाद के दिन-दिन अधिक नचारी।
पूरन ब्रह्म पाषाण से प्रगटे मारे असुर प्रचारी।।
सीता हरण सहो रघुवंशी मन में किछु ने विचारी।

लात विभीषण मारे जबहीं नहि तब रोष सम्हारी॥
कंस-केशि हति धूरि मिलाई उग्रसेन दुख टारी।
'साहेब' भक्ति-अधीन सदा यह मुरलीधर धनुधारी॥

(4)

जाके जपति जानकी नाम, ताहि मन लागो हो लागो॥ध्रु0
दहिने लखन वाम सिय शोभित आगे वीर हनुमान।
ताके बिमल युगल पद पंकज लागि रहो नित ध्यान॥
किरिट-मुकुट ओ छत्र विराजित सुन्दर तन अभिराम।
कर कमलनि पर धनुषवाण प्रभु अवधपुरी निजधाम॥
जामबन्त सुग्रीव विभीषण बालि सुवन गुणवन्त।
नल ओ नील संकल कपि सेना सुमिरत श्री भगवन्त॥
कानन सकल कल जनि पावन मुनि जन मन सुख देल।
रावण कुम्भकरण रण मारल जिति त्रिभुवन यश लेल॥
भै अवतार तारल कत पामर सभक समारल काम।
घुरि पुन लखन सिया सह सेना अवध कएल विश्राम॥
राम कृष्ण दोउ मूरति मनोहर पूरण ब्रह्म अवतार।
'साहेब' पतित पड़ पाअन पर कोउ उतारो पार॥

(5)

राम भजन सुमिरन को महिमा कोउ-कोउ प्यारे जानता है।
जाके दिल अनुराग जो उपजे प्रेम मगन से डोलता है॥
है सो जन सबहिं सो न्यारा 'राम-भजन' मो रहता है।
मौनी, शेख, दिगम्बर, सूफी, पण्डित जन बहु बकता है॥
ज्ञानी गुणी सिद्ध मुनि योगी कोइ एक जन हरिभगता है।
जाको दहिन विधाता जग मो हरिगुन तेहि निक लगता है॥
हरि विमुखी विषया रस भोगी यम घर पानी भरता है॥
वार-वार मिनती है हरि सौं 'साहेब' चरण निरखता है।
भक्ति मुक्ति वैराग परमपद प्रेम भजन दृढ़ मँगता है॥

संकलन- भवनाथ झा

म.म. रामावतार शर्मा कृत 'मारुतिशतकम्' के हनुमान्

प्रो. चन्द्रशेखर द्विवेदी भारद्वाज

पं. रामावतार शर्मा संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में बिहार के गौरव रहे हैं। वे परम्परा के दुर्धर्ष विद्वान् होने के साथ साथ मौलिक चिन्तक थे। प्रसिद्ध ग्रन्थ परमार्थदर्शनम् में उन्होंने आधुनिक विज्ञान के आलोक में वैशेषिक दर्शन की प्राचीन मान्यताओं को भी परिमार्जित किया है। उन्होंने केवल गंगाजल पीकर हनुमानजी की स्तुति में एक सौ पद्यों का काव्य मारुतिशतकम् की रचना की थी। इस ग्रन्थ का प्रकाशन महावीर मन्दिर से 1999 ई में हुआ है। इसी मारुतिशतकम् के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल रहे हैं प्रो. चन्द्रशेखर भारद्वाज।

संस्कृत साहित्य के अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा ने संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं में लगभग 45 पुस्तकें लिखीं। उनकी रचनाओं में 'मारुतिशतकम्' अन्यतम रचना है।

इस गीतिकाव्य को प्रकाशित कराने का श्रेय आदरणीय आचार्य किशोर कुणाल, आचार्य रंजन सूरिदेव को जाता है। उनका प्रयास स्तुल्य है। एक सुखद संयोग ही है कि महावीर मन्दिर पटना से प्रकाशित इस पुस्तक को पं. रामावतार शर्मा के अनुज पं. लक्ष्मीकांत शर्मा की पौत्री डा. कुमारी निर्मला शर्मा (धर्मपत्नी पं. चन्द्रकान्त द्विवेदी) ने प्रदान किया। मैं अपने को उनका ऋणी मानता हूँ।

मारुतिशतकम् हनुमत्-चरित पर आधारित ऐसा गीतिकाव्य है, जिसे पढ़ते वक्त अल्पज्ञ घबराते हैं, पर पंडितों के लिए यह गीतिकाव्य क्रीड़ास्थल है। इसका मायने यह नहीं कि सामान्य पाठक इसमें से कुछ भी प्राप्त नहीं करते। मैं इस गीतिकाव्य पर एक आलेख ऐसे पाठकों को ध्यान में रखकर लिख रहा हूँ।

यह काव्य व्याख्यागम्य है। काव्य शुद्ध गौड़ी रीति में निबद्ध है। इसमें अनुप्रास की छटा मुग्ध कर देती है; किन्तु उत्प्रेक्षा की कल्पना तक पहुँचने के लिए संस्कृत के विद्वानों को भी आयास करना पड़ता है। इस काव्य में शर्माजी ने अपने आराध्य देव दीर्घकाय हनुमान् के अनुरूप ओजस्वी वर्णों, दीर्घदेह समासों के प्रयोग का बाहुल्य है।

कहा जाता है कि इस रचना को पंडित प्रवर ने 1894 में एक ही बैठकी में रच डाली थी। 48 घंटे तक निरंतर लिखने के पश्चात् यह रचना तैयार हुई। लिखने के समय कविवार मौन रहे और बीच बीच में अनाहार रहने के कारण गंगाजल लेते रहे। काव्य-साधना की दृष्टि से महामहोपाध्याय की यह हनुमद्भक्ति अपूर्व है। आचार्य श्रीरंजन सूरिदेव लिखते हैं-

"कहना न होगा कि वर्ण्य विषय के चामत्कारिक उपस्थापना में पं. शर्मा की काव्य प्रौढ़ि कहीं-कहीं सूर्यशतकम् को भी अतिक्रान्त कर देती है। सचमुच, उदात्त सौंदर्य, रमणीय कल्पना एवं मोहक बिम्बविधान की दृष्टि से मारुतिशतकम् संस्कृत-काव्य-वाङ्मय के लिए अपूर्व उपलब्धि है। यह शतश्लोकी स्तोत्र काव्य परम्परा का क्रोशशिलात्मक स्तुति-ग्रंथ है। विषयबन्ध, काव्यात्मकता एवं आपादरमणीयता की दृष्टि से इसकी द्वितीयता नहीं।"

इस स्तुति-काव्य के 100 श्लोक स्रग्धरा छन्द में 101 वाँ श्लोक पृथ्वी छन्द में और 102 वाँ श्लोक मालिनी छन्द में है।

कर्मयोगी आचार्य किशोर कुणाल और पं. काशीनाथ मिश्र मारुतिशतकम् के सम्बन्ध में लिखते हैं-

"मारुतिशतकम् के आद्यन्त अध्ययन और सागोपांग विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ समस्त संस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं में मूर्द्धन्य स्थान का सहज अधिकारी है।"

यह गीत काव्य तीन प्रकरणों में विभक्त है (क) हनुमान (ख) गर्जितम् और (ग) लांगूलतदास्फोटौ अव्यात् की मंगलकारी भावना से गीतिकाव्य का आरम्भ होता है-

अव्यादव्याजभव्याकृतिरतनुरयव्याप्तनव्यानुभावः
सव्यासव्यादिदिव्यावनिरुहकुसुमार्चाभृदव्याकुलाङ्गः।

कैसे हनुमान् सज्जनों की रक्षा करें? उत्तर है-प्राकृतिक रूप से भव्य आकृति वाले, तीव्र वेग से व्याप्त नूतन प्रभाव वाले, उदयाचल और अस्ताचल के दिव्य वृक्षों के पुष्पों की पूजा धारण करने वाले, धीर गंभीर शरीर वाले, राक्षसों के समूहों को सदा यमराज को प्रदान करने वाले।

गोस्वामी तुलसीदास के हनुमान बँधकर रावण के समक्ष प्रस्तुत होते हैं। रावण पूछता है-

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेसि बन खीसा॥
की धौ श्रवन सुनहीं नहिं मोही। देखऊं अति असंक सठ तोही॥ (सुंदरकांड)

हनुमान् ने कहा-

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।

उसीका मैं दूत हूँ। पं. रामावतार शर्मा का रावण तुलसीदास की तरह ही प्रश्न करता है-

कस्त्वं रामाश्रितोऽहं तव किमिति वधूवश्यता नाक्षशत्रुः
किं पङ्को नास्रपारिर्भवति किल पयोदोहनायैव पारिः।
नैवं त्वत्काननारिः कथमिव परशुः सत्यमाः सन्ततेस्ते
भूयादेवं दशास्यं शिथिलयन् भूतये वः कपीन्द्रः॥ ५९॥

कस्त्वं? तू कौन है? हनुमान्- मैं रामाश्रित हूँ। हनुमान्- नहीं, मैं अक्ष का शत्रु हूँ। रावण- क्या तुम अक्ष (गाड़ी का धुरा) के शत्रु पंक हो? हनुमान- नहीं मैं असपारि= राक्षसों का शत्रु हूँ। रावण- पारि तो दूध दुहने का पात्र विशेष होता है। हनुमान् नहीं मैं कानन का अरि हूँ। रावण- ओह तो क्या तुम कुल्हाड़ी हो? हनुमान- हाँ मैं तुम्हारे सन्तति वन के लिए कुल्हाड़ी हूँ। इस प्रकार वार्त्ताक्रम में रावण को हरानेवाले हनुमान्जी पाठकों की उन्नति करें।

मेघनाद अतिक्रुद्ध होकर गर्जन करता हुआ समस्त सेना में उत्पात मचा रहा था, जब सुग्रीव दुर्बल हो रहे थे, जाम्बवान कष्टाकुल हो लड़खड़ा रहे थे और भयभीत नील का मुख नीला पड़ गया था, उसकी समय अचानक संकट के निवारणार्थ हनुमान् वहाँ प्रकट हुए, ऐसे महावीर जी सज्जनों की विपत्तियों का भंजन करें।

सुग्रीवे क्लीबजीवे विवलति च नलेऽप्यङ्गदे भङ्गमाप्ते
ऋक्षेशे क्लेशशेषे स्खलति भयभरान्नीलवस्त्रे च नीले।
रोषावेशादशेषं विकलयति बलं मेघनादे सनादं
प्राप्तः प्राभञ्जनिर्द्राग्विरचयतु विपद्भञ्जनं सज्जनानाम्॥२॥

राक्षसों की हड्डियों से देवता को प्रसन्नता प्रदान करनेवाले, युद्ध क्षेत्र में शत्रु सेना का सुख छीननेवाले, मदान्धों के मद को समाप्त करनेवाले, बल में रावण को भी अतिक्रान्त करनेवाले, वेदरक्षक

कपिश्रेष्ठ, पवनतनय अक्षय पराक्रमशाली है। समुद्र पार करते समय तटवर्ती वृक्ष उनके उड़ने के तीव्र वेग से दूर जा गिरे। शिवावतार हनुमान् अपार शस्त्रास्त्रों से सज्जित राक्षसों की सेना को चूर्ण करनेवाले अपने भवन में रहकर भी राक्षस राज रावण के चित्त को पताका की तरह चंचल करनेवाले हैं। जैसे सूर्य खद्योत समूहों को प्रकाशहीन करता है, वैसे ही मद्यपान में प्रसक्त शत्रुओं को मर्दन करनेवाले हनुमानजी हैं। वे लोहे-जैसे भुजदंड वाले, पर्वत के समान स्थिर स्वरूप वाले, शिव के समान बलवान् तथा रावण को भी आश्चर्य में डालनेवाले हैं। वे हमें शोकादि अवस्था में शांति का सुगंधिलेप लगाते हैं। पृथ्वी विशाल है, वह शेषजी के फण पर सरसों के समान है। शेषजी समुद्र में कमल के समान हैं। समुद्र भी कुंभज ऋषि के हाथ में अंजलिभर है। कुंभज आकाश में एक खद्योत के समान हैं। आकाश वामनावतार का एक पग है। वामनजी हनुमानजी के बिम्बफल में भौरें के समान हैं, और भगवान् उनके हाथ में आँवले के समान। लंका में दहन के समय राक्षसों ने देखा कि यह वानर तो अपनी ही पूँछ की आग से जल रहा है, वे हँसने लगे, उनकी हंसी अभी आगे बढ़ी भी नहीं कि सारी लंका जलकर भस्म हो गयी। यह हनुमान् की जलाने की तीव्रता थी।

कपिश्रेष्ठ हनुमानजी भीलिनी के केशों में गुथे हुए मल्लिका-पुष्पों से सुगंधित अधखिली काम्पिल लता को हल्लीसक नृत्य का उल्लास प्रदान करने में प्रवीण है। उनकी प्रवीणता का वर्णन कविवर के अनुप्रासमय शब्दों में द्रष्टव्य है-

भिल्लीधम्मिल्लपरिमलिनि दरोत्फुल्लकाम्पिल्लवल्ली-
हल्लीसोल्लासमल्ले मरुति सति सरिल्लोलकल्लोलवेल्ले॥ ११॥

कूदे हनुमानजी की पूँछ को देखकर, तर्क और कुतूहल से पूर्ण भोली-भाली सिद्ध स्त्रियों ने सोचा कि दिन में चन्द्र अपनी ज्योत्स्ना के विकास में लगा है क्या? उसके ऊपर मस्तक रहित शेषजी हैं क्या? उसके ऊपर सुवर्ण गिरि और उसके ऊपर नीलगिरि है क्या? हनुमान् लंका जलाकर लौट रहे हैं। चन्द्र-बिम्ब को देखकर सब वानरों ने आश्चर्य से सोचा कि क्या हनुमान् रावण के मुकुट को रामजी के चरणों में समर्पित करने के लिए ले जा रहे हैं? महावीरजी महेन्द्र पर्वत के उज्ज्वल शिखर से उड़े तो उनकी उठी हुई गोलाकार पूँछ देखकर शिव-गणों को उसमें शिव-माला का, देवताओं को गंगा के तरंग की तथा किन्नर बधुओं को उत्तुंग शिखर का भ्रम हुआ। अंजनानन्दन के आकाश में उड़ने पर उनकी पूँछ में कही पर स्फटिक पर्वत की चमक से अतिश्वेत वर्ण, कहीं पर सूर्य की आभा से पीतवर्ण और कहीं पर विष्णु की भ्रमर सदृश कान्ति से श्याम वर्ण की प्रतीति हुई। देवताओं को भ्रम हुआ कि कहीं यह गंगा, सरस्वती यमुना का मिला रूप त्रिवेणी तो नहीं। पिघले हुए उत्तम सोने के समान दिगन्तों में पहुँचा हनुमानजी का तेजःपुंज, मनोहर लग रहा है, जिसे विष्णु पीताम्बर समझकर पहनने को चल पड़े। देवता लोग सुमेरु समझकर चढ़ने को तैयार हो गये। पक्षी-झुंड अग्नि की धधक समझ भय के मारे भागने लगे।

हनुमानजी ने जो जलती पूँछ को क्या लहरायी, मानो रामचन्द्र की शोकाग्नि ही बुझा दी। जैसे सिंह मृगों को मारता है, वैसे ही वे राक्षसों को मारते हैं। वे गेरू के ढेर के समान लाल पीले अंगवाले चौराहों पर मस्ती से चलते हैं तो लगता है कि साक्षात् पर्वत ही चल रहा है। समुद्र पार करते हुए हाथ में द्रोणाचल लिए वे जब चल पड़े, तो जड़ी बूटियाँ चमक उठीं। जड़ी-बूटियाँ डर गयीं कि कहीं उनके ईश सुषेण न गिर जायें। अतः वे हनुमानजी की आराधना करने लगीं। संग्राम में पर्वतों से जब हनुमान की बाहुओं का धक्का लगता तो उससे उत्पन्न पवन से भगवान् विष्णु का पांचजन्य शंख बज उठता। बिन बजाए बजने से डरकर लक्ष्मी विष्णु से प्रार्थना करने लगीं कि नाथ इसे फेंक दीजिए, इसमें दैत्यों का भूत वास करता है। जन्म लेते ही जब आंजनेय सूर्य को आम्रफल समझ आकाश की ओर बढ़े तो उनके वेग से उनके पैर

में पृथ्वी सट गयीं, ऐसी पीछे से आती हुई पृथ्वी को उन्होंने आश्चर्य से देखा। उस समय वेगातिशय से घबराए इन्द्र भागने लगे, वायु चिल्लाने लगे, चन्द्र को नींद आने लगी, ब्रह्मा घबड़ा उठे और अश्विनीकुमारों की आंखों में आँसू भर गए। सूर्य के सारथी अरुण व्याकुल हो गए।

समुद्र पार करने के समय हनुमानजी की पूँछ ऊपर उठी, मानो वह कहने लगें कि सावधान, हनुमान् समुद्र संतरण करने जा रहे हैं, ब्रह्मा धैर्य करें, विष्णु अपना कौशल दिखाएं, शिव पूर्ण धीरता का अवलम्बन करें। हनुमानजी की पूँछ से जब फट् की आवाज हुई, तो राक्षसों को बुखार हो आया। उसी आवाज से देवताओं का कर्ण अमृत से भर गया। किन्नर उसे उत्सुक हो कानों से सुने, और असुर की स्त्रियाँ उसे सुनकर अत्यन्त घबरा उठीं।

पादाङ्गुष्ठेन पूर्वं तदनु सलसं दक्षिणान्येन दोष्णा
क्रान्तं क्रोधान्ततश्च स्फुटमणिमहसा पाणियुग्मेन॥
निष्कम्पं वीक्ष्य भीमः स्तवमतनुबलो यस्य कर्त्तुं प्रवृत्तो
भूयात्त्रैलोक्यबन्धुः प्लवगपरिवृढः सोऽनिशं वो विभूत्यै॥५२॥

महाभारत काल में हनुमानजी की पूँछ को भीमसेन ने पहले पैर के अंगूठे से, तब बाएँ हाथ से, फिर, क्रोध के मारे चमकते मणिवाले दोनों हाथों से हटाना चाहा, फिर भी हिलती न देखकर महाबली भीम जिनकी स्तुति करने लगे, वे तीनों लोक के हित-चिन्तक हनुमान आप सबकी उन्नति करें।

पं. रामावतार शर्मा की इस वर्णन शैली से प्रभावित डा. श्याम नंदन किशोर की पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं-

सारी लगायी शक्ति पूँछ जरा भी न हिली, भीमसेन श्रमसीकर से हुए पानी पानी।
कर जोड़े बोले बताएँ हे कपिश्रेष्ठ, किस वेश में है आप कौन हैं वीर प्राणी॥
बन्धु वायुनंदन मैं अग्रज तुम्हारा हूँ, तुम्हारे हित में ही आगे जाने से रोकता हूँ,
शक्तिपुंज अहंकार तुच्छ बना देता है अपनेपन के नाते इसी से मैं टोकता हूँ॥

पं शर्मा लिखते हैं कि-

"जिस हनुमानजी को योगियों ने शिव, वानरों ने स्वामी, राक्षसों ने काल, सीता ने शोक-निवारक, निष्कपट लोगों ने मंगलागार समझा मुझ जैसे सीधे-सादे लोगों ने वरदायक समझा। वही कपिगण के पति हनुमान्, संग्राम में कठोर भगवान् चरणधूलि से प्रीति रखनेवाले हैं। वे राक्षसों की पत्नियों की चन्द्रिका के सूर्य, विघ्न रूपी पर्वतों के लिए वज्र, घोर संग्राम रूप वन के लिए सिंह, सीता के शोकरूपी विशाल समुद्र के लिए बड़वानल, अपने चरणारविन्द में पहुँचे भक्तों के लिए घनघोर हैं। जिनका शरीर अमृत का प्रवाह, वेग, वायु, प्रताप अग्नि, पुच्छलता अन्तहीन, यश चन्द्रमा, मन आकाश, कीर्तिगान इष्ट को प्राप्त करनेवाला, चरण कमल इस संसार सागर को पार करने के लिए नौका है। इन आठों अंगों से युक्त वे साक्षात् शिव हैं। जिस कामदेव के उर से ब्रह्मा की आँखें मुँद गयीं, जिसके बाण से पीड़ित होकर विष्णु, समुद्र कन्या को अपने हृदय में स्थान दिए और शिवजी जिसे भस्म करके भी आराम न मिलने से अर्धनारीश्वर का रूप धारण किया, उस कामदेव को तृणवत् समझकर हनुमानजी ब्रह्मचारी बन गए, ऐसे हनुमान को शत शत प्रणाम।"

संस्कृत विभाग, आर.जे.एस. कॉलेज, दिघवारा
सारण (बिहार)

पटना में छठ-पर्व का एक वृत्तान्त

मूल- फेनी पार्क्स पार्ली(1794-1875)
अनुवाद
डॉ. छाया कुमारी
एम.ए. अंग्रेजी, पी.एच.डी.।

फेनी पार्क्स पार्ली(1794-1875) इस्ट इंडिया कम्पनी के चार्ल्स क्रोफोर्ड पार्क्स की पत्नी तथा वेल्स की महिला लेखिका थीं। इसने 1822-1845 तक भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण कर वहाँ का वृत्तान्त Wanderings of a Pilgrim in search of the Picturesque During four and twenty years in the East with revelations of Life in the Zenana लिखा, जिसका प्रकाशन 1850 ई. में दो खण्डों में लन्दन से हुआ। इस पुस्तक में अनेक रंगीन चित्र भी संलग्न हैं। इसके दूसरे खण्ड में पृ. सं. 407-11 पर पटना में सूर्य-पूजा के दिन का बहुत सुन्दर वृत्तान्त लिखा गया है। लेखिका ने 15 नवम्बर से 19 नवम्बर, 1844 ई. में पटना का भ्रमण किया था, जिसका वृत्तान्त यहाँ प्रस्तुत है।

दिनांक, १५- निर्देशिका के अनुसार, मुंगेर से 87 मील के पहले, 09 मील पश्चात् अर्थात् बाँकीपुर स्टेशन से 09 मील पूरब, एक ग्रामीण शहर अवस्थित है, जिसकी पश्चिमी सीमा पर पहाड़ी से आती हुई एक नदी बहती है, जिसपर ईंट अथवा पत्थर का एक पक्का पुल बना हुआ है। हमलोग जैसे ही फतुहा से आगे निकले, शरीर से भारी-भरकम व्यवसायियों को नदी में स्नान करते देखा, जिन्होंने मेजपोश अथवा तौलिया आदि खरीदने के बारे में हमलोगों से पूछा; चूँकि वह स्थान इन वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध था। हमलोगों ने अपनी नाव वहाँ खड़ी की, जहाँ एक पवित्र स्थान था; वह एक सन्त की कब्रगाह थी, कब्रगाह और उसके स्तम्भ मिट्टी के बने हुए थे। वे ऊँची जमीन के तल पर स्थित थे। यह स्थान नदी की ओर से आनेवाली राह से विधिवत् जुड़ा हुआ था, तथा शहतीर की चहारदिवारी से सुरक्षित था, जिसका बाहरी भाग भी लकड़ी के शहतीरों से भरा था। पुजारी ने हमलोगों को बड़े आह्लाद के साथ इसे दिखाया और कहा ''यह निर्देश है कि कभी भी नदी पवित्र कब्र को लाँघ नहीं सकेगी, चूँकि यह कब्र यहाँ सात सौ वर्षों से अवस्थित है। आप देखते हैं कि यह मिट्टी से बनी हुई है, नदी सभी गाँवों को जलप्लावित कर देती है, किन्तु यह स्थान सुरक्षित रहता है। यह निर्देश है कि यह कब्र कभी भी पत्थरों से नहीं बनेगी।'' इसपर जब मैंने अपनी टिप्पणी की और चारों ओर लगे बाड़ की मजबूती आँकने लगा तो वह क्रोधित होकर चिल्लाता हुआ माफी माँगने की माँग करने लगा ।

दिनांक, १६- सुबह की बेला में नदी के प्रथम अवलोकन से मन विभोर हो गया, हमलोग एक प्राचीन ध्वस्तप्राय दुर्ग जिसका कुछ भाग जलधारा में खण्डित होकर गिर पड़ा था, के निकट पहुँचे। हालाँकि, दुर्ग के शिखर पर एक भव्य बुर्ज था और वहाँ से कुछ आगे एक दूसरा दुर्ग था और तब मन्दिरों का क्रम शुरू होता था। हमलोग अब अजीमाबाद पहुँच चुके थे। चूँकि प्राचीन पटना को मुसलमानों

द्वारा उक्त नाम से जाना जाता है, इसका विस्तार नदी के तट के साथ दूरी तक फैला हुआ है, जो प्राचीन पालिबोथ्रा का स्थल है और जिसका हिन्दु नामकरण श्रीनगर है।

"भागलपुर के ठग, कहलगाँव के बटमार और पटना के दिवालिए बड़े प्रसिद्ध है।"[1] (1. Oriental Provebs, No. 136) हिन्दू लोग बड़ी संख्या में समूह बनाकर देशी ढोल और बाजे-गाजे के साथ अर्घ्य देने के लिए नदी की ओर आ रहे थे। वे अपने साथ लाए अर्घ्यदानी, फलों और शाक-सब्जियों से भरे थैले एवं केलों के बड़े-बड़े घौंद नदी में धो रहे थे। ब्राह्मणों ने अर्घ्य की वस्तुओं पर जल छिड़का, मन्त्रोचार की पुनरावृत्ति की, लोगों ने स्नान किया और घर लौट गए।

यह सूर्य का त्योहार था- सूर्य व्रत। लोगों के वस्त्राभूषण अत्यन्त ही मनोहारी एवं आकर्षक रंगों में दीखते थे। चमकीले, सुनहले रंगों की ध्वजाएँ, जिनपर हनुमानजी की सफेद आकृति उकेरी गयी थी, लम्बी-लम्बी बाँसों पर फहरा रही थी।

नदी से ऊपर पुरानी किला की ओर विभिन्न प्रकार के चित्रनुमा मकानों के साथ हिन्दू मन्दिरों, आकर्षक वृक्षों तथा दूरस्थ मस्जिद दृश्यमान होने लगे। गंगा के रेतीले भाग में घास-पुआल की अस्थायी झोपड़ियाँ थीं, जहाँ व्रती स्नान कर रहे थे तथा फूल और फल अर्पित कर रहे थे। यह मनोभावन दृश्य था, जो तट पर जीवन्त दीख रहा था। नगर के मन्दिरों-मकानों के ऊँचे तटीय भाग नदी में अधिक जीवन्त हो उठे थे। कलश युक्त शिखर बहुविध ढंग से सजे थे। महिलाओं की बड़ी-बड़ी टोलियाँ, जो विभिन्न रंग के आकर्षक वस्त्राभूषणों से सज्जित थीं, पूजा कर रही थीं, स्नान कर रही थी और सम्बद्ध ब्राह्मणों को फूल फल आदि दे रही थी। स्नान-काल में हिन्दू कुछ निर्धारित मन्त्रों की पुनरावृत्ति करते थे, जिनमें विभिन्न पवित्र नदियों के तीर्थ-जल कर आवाहन था, जो न केवल गंगा वरन् अन्य पवित्र नदियों से संबद्ध था। स्नान के बाद वे सूर्य भगवान् को खड़ी मुद्रा में भक्ति निवेदन करते थे। कुछ दोनों हाथ जोड़कर मस्तक व ललाट से सटाते थे और सूर्यदेव की ओर देखते थे। फिर सात बार परिक्रमा करते हुए भिन्न-भिन्न मुद्रा में अपनी विनती का भाव प्रकट करते थे। इस क्रम में अपने युगल हाथों में जल लेकर वे सूर्यदेव की ओर उछालते हुए समर्पित करते थे।

पटना में नावों की संख्या विस्मयकारी थी। नदी के दूसरे रेती के तट पर नावों के कारीगर थे, जहाँ शहतीरों से भरे असंख्य नावें थीं। हाजीपुर जाने के क्रम में हमलोग नदी के दूसरे तट पर नहीं गये जहाँ एक बड़ा मेला लगता था; जिसमें हाथी, घोड़े व कम्बल आदि बेचे जाते थे। गंडक नदी की बाँयी ओर मकान और घुड़दौड़ की जगहें थीं। यह नदी नेपाल की तराई से आती है। इसकी वार्षिक मेला में सारे भारतवर्ष के लोग यहाँ आते हैं, जो उक्त महीने की पूर्णिमा तक चलता रहता है।

हमलोगों ने अपनी नाव गोलघर के सामने रोक दी। निर्देशिका के अनुसार, पटना, बाँकीपुर का सिविल स्टेशन, गंगा के किनारे दस मीलों तक फैला है, जो दीनापुर (दानापुर) से चौदह मील दूरस्थ है। यह स्थान अफीम, चना, मोमबत्ती आदि के लिए मशहूर है। करीब सत्रह सौ नावें यहाँ एक बार पड़ाव डालती हैं। यहाँ एक नवाब का निवास है, यहाँ एक सदर और सिविल स्टेशन है। सरकारी संस्थान बाँकीपुर में हैं, यहाँ कुछ भव्य भवन हैं। एक बड़ा अन्न-भण्डार है, जो वृत्ताकार है तथा जिसपर दो ओर से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

इसके ऊपर एक गुम्बद है जिसकी बगल में एक बड़ा छिद्र है, जो संभवतः हवा के आने-जाने की राह है। इस बड़े अन्नागार में एक ही दरबाजा है; इसका निर्माण संभवतः अकाल से राहत के लिए एक अन्न-भंडार के रूप में किया गया है। यह एक बहुत बड़ा मकान है जो अपनी बहुविध उपयोगिताओं के लिए जाना जाता है; वर्तमान में यह प्रहरी भवन अथवा सुरक्षा भवन के रूप में जाना जाता है।

स्टीमर यहाँ यदा-कदा रुकते हैं; कभी-कभी एक-दो मील दूर जाकर रुकते हैं, जिस कारण बाँकीपुर अथवा दीनापुर जाने के लिए एक्का की सवारी करनी पड़ती है। गोलघर तक दानापुर कैण्टोन्मेण्ट से जानेवाली सड़क की स्थिति बहुत ही अच्छी है।

दिनांक, १७- दीघा में हावेल के फार्महाउस पर गया, जहाँ उनकी विधवा को पाया, जो अत्यन्त ही वृद्ध हो चुकी थी। पूर्व में वहाँ की व्यवस्था अवश्य ही उत्तम रही होगी; किन्तु अब केवल खाली पड़ी झोपड़ियाँ थीं, जिनका शायद कोई उपयोग न था। कुछ गोश्त, सूअर के मांस तथा शराब की घूँटें मैंने ली, जो स्वास्थ्यवर्द्धक थी। दानापुर पहुँचने के बाद वहाँ (घाट पर) अधिक भीड़ थी और नाव लगाने के लिए उसे एक कोश और दूरी तय करनी पड़ती, अतः मेरा माँझी नाव को सरकारी पड़ाव पर लगाना चाहता था, जिसका हमने प्रतिवाद किया। घाट के ठीक सामने एक देशी चिकित्सालय था, जो जगह अत्यन्त ही असुविधाजनक थी।

दिनांक, १८- किन्नू लाल की दूकान से 6 इंचों का, एक मन मोमबती खरीदी गयी, जिसका मूल्य अस्सी रुपये था। वुलाक के ताजी दांडीस प्रस्तुत करने के लिए एक चपरासी को माँझी के साथ नदी के दूसरे छोर से उन वस्तुओं को लाने के लिए भेजने में उनके अनमने भाव के कारण अत्यधिक परेशानी झेलनी पड़ी।

दिनांक, १९- सरदार ने हमलोगों को सूचना दी कि वह अब हमलोगों को छोड़कर जाना चाहता है। अक्सर, दीनापुर के नजदीक निवास करनेवाले नौकर अपने स्वामी की सेवा छोड़कर, किसी भी प्रकार की हिदायत को अनसुनी कर, अपनी सुविधा के उपयुक्त समझकर, वहाँ रहना तय कर लेते रहे हैं। 4 बजे सन्ध्या वुलाक के लिए ताजी दाण्डीज वहाँ पहुँच गया; मैंने उक्त स्थान से मुक्त होने में अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किया।

दीनापुर एक विशाल यूरोपियन फौजी स्टेशन था, जहाँ नावें, स्टीमर आदि सेना के अधिकारियों द्वारा रोककर कोयला तथा यात्रियों को उतारे जाते थे। यह गंगा के दाहिने तट पर था, जो भागीरथी होते हुए 508 मील की दूरी पर अवस्थित कलकता से स्टीमर रूट पर स्थित था। यहाँ से सुन्दरवन होती जमीनी दूरी 796 मीलों की दूरी थी। पत्राचार में साढ़े तीन दिन के समय लगते थे। बकरे का मांस, गोमांस, पक्षी-मांस, अण्डे, रोटी, मक्खन विभिन्न प्रकार के फल, नैपकीन, तौलिया, मेजपोश, सूती कपड़े, जूते, पटना की मोमबती, चना इत्यादि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। यहाँ यूरोपियन दूकानदार भी थे। नाटक खेले जाते थे और नीलामी भी होती थी। आरा और तिरहुत के यात्री यहाँ आते थे। ऐसे दानापुर को अत्यधिक खुशी से छोड़ा, और छितनियावाँ के निकट आनन्ददायी जगह में नावों-स्टीमर आदि खड़ा करने की जगह पर पहुँचा। तब कहीं जाकर दानापुर के व्यस्ततम विशाल घाट-स्टेशन की पीड़ा से मुक्ति मिली। यहाँ के लोग व्यवहार-कुशल और यात्रान्त में कोई कष्ट देनेवाले नहीं थे; जबतक हमलोग इलाहाबाद नहीं पहुँचे गये।

❑

पाटलिपुत्र की ऐतिहासिक विरासत

ओम प्रकाश सिन्हा

पाटलिपुत्र को लगभग हजार वर्षो तक भारत की राजधानी रहने की गरिमा मिली है। गंगा के किनारे पूर्व से पश्चिम तक फैले रहने के कारण इसका धार्मिक, सांस्कृतिक एवं व्यापारिक महत्त्व भी कम नहीं। कभी भगवान् बुद्ध ने कहा था कि पाटलिपुत्र हमेशा उन्नति करता रहेगा। ईशा की प्रथम शती में महाकवि अश्वघोष ने भगवान् बुद्ध की वाणी को बुद्धचरितम् के २२ वें सर्ग में इन शब्दों में कहा है कि देवतागण खजाना अपने हाथ में लेकर इस पाटलिपुत्र नगर में आते हैं। अत: आगे चलकर यह नगर संसार में श्रेष्ठ होगा। भगवान् बुद्ध ने इस नगर के लिए शुभकामना दी थी। इसी पाटलिपुत्र की ऐतिहासिकता पर कुछ तथ्य यहाँ संकलित हैं।

प्राचीन शहर पटना का इतिहास गौरवपूर्ण है। पटना सिटी के पश्चिम में सुल्तानगंज से पूरब में फतुहा तक फैले पटना सिटी के चप्पे-चप्पे में पुरानी सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव आज भी बरकार है। इस शहर के सीने में अनेक महान् शासकों की गौरवगाथा छुपी है। यह शहर कई शासकों के उत्थान और पतन का मूल गवाह है। प्रकृति ने अनेक बार इसे बर्बाद किया किन्तु वह फिर भी आबाद हुआ।

ऋग्वैदिक काल में यह आर्यों का शहर था। बौद्धकाल में यह मगध सम्राट् अजातशत्रु की राजधानी बनी। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय (मौर्यकाल) तो इस शहर को अनुपम भव्यता प्राप्त थी। मौर्यकाल के इतिहासकारों ने इसे पाटलिपुत्र का स्वर्णिम काल माना है। अशोक महान् ने इस शहर को अन्तराष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बनाया।

मौर्यकालीन चीनी यात्री मेगास्थनीज ने अपनी किताब 'इंडिका' में मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र को भारत का सबसे अच्छा नगर बताया है, जो सोन और गंगा के संगम पर बसा हुआ था। यह नगर साढ़े नौ मील लंबा और पौने दो मील चौड़ा था, इसके चारों ओर 907 फुट चौड़ी और 31 फुट गहरी खाई थी, जिसमें 65 दरवाजे और 571 बुर्ज थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त का राजप्रासाद भी इसी नगर में था। इस नगर की अपनी शोभा थी, राय दरबार शान-शौकत से पूर्ण था। कुम्हरार की खुदाई में मिले अवशेषों से मेगास्थनीय और फाहिचान के कथनों की सत्यता स्वत: ही प्रमाणित हो जाती हे।

गुप्तकाल में समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त प्रथम ने इसे खूब सजाया सँवारा। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में यहाँ आये चीनी यात्री फाहिचान ने 'पाटलिपुत्र' की बड़ी सुन्दर चर्चा की है।

इस नगर का वर्णन गुप्तकाल के बाद भी देखने को मिलता है। इस शहर का विकास छठी शताब्दी के बाद ही हुआ। उस समय नगर आकार में छोटा हुआ करते थे। बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए शहर के चारों ओर दीवार होती थी। शताब्दियों पूर्व पटना सिटी भी दीवार और किलों से घिरा शानदार नगर हुआ करता था। लेकिन उन दिनों आग, पानी से इसे सदा खतरा बना रहता था। कहते हैं पत्थर की मस्जिद, चिमनी घाट और शेरशाह की मस्जिद की तरफ आज से कई सौ साल पहले बहुत कम आबादी हुआ करती थी। पश्चिम और पूरब दरवाजा के पूरब उन दिनों नरकटों का जंगल हुआ करता था। ऐसा कहा जाता है कि शताब्दियों पूर्व पश्चिम दरबाजा के पास से नहर बहा करती थी, जो गंगा से होकर पश्चिम बंगाल तक जाती थी। इसी रास्ते से व्यापारी तिजारत करने बंगाल जाया करते थे। इतिहासकारों का कहना है कि यहाँ नहर नहीं खाई हुआ करती थी, क्योंकि अक्सर विदेशी शत्रुओं

के आक्रमण से उन दिनों बचने के लिए लोग नहर की सीमा के बाहर खाइयाँ बनाया करते थे।

9वीं शताब्दी में पाल राजा धर्मपाल के समय भी यह नगर व्यापार और राजनीति के दृष्टिकोण से देश का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। बादशाह अजीम शाह के नाम पर प्राचीन पटना (पूर्वी पटना) का नाम अजीमाबाद पड़ा। गुलजारबाग स्टेशन के करीब 250 मीटर पूरब में रेलवे लाइन से सटे एक ऊँचा टीला है, जिसे लोग **'फसियारी मथनी'** के नाम से जानते हैं। लगभग 150 मीटर ऊँचे इस टीले पर नीम के दो-तीन विशाल वृक्षों के बीच में एक मजार है, जिसके नाम पर इस मथनी के सटे मेंहदीगंज मुहल्ला बसा है। पटना को आबाद करनेवाले अजीम शाह के वे मुलाजिम हुआ करते थे। कहते हैं मुहल्ला सादिकपुर के एक पहुँचे हुए फकीर काले शाह ने बादशाह को सलाह दी थी कि अपने साईस पीर मेंहदी को इस शहर के पुनरुद्धार का काम सौपे तो उन्हें सफलता मिलेगी और इस तरह बादशाह ने पीर मेंहदी को इस शहर के पुनरुद्धार का काम सौंपा। इसी टीले पर बैठकर वे शहर की निगरानी किया करते थे। इसके अलावे उन्होंने अपने अन्य तीन भाइयों मंसूर, माजफ और नौजर को भी शहर की विभिन्न सीमाओं पर निगरानी के लिए नियुक्त किया था। बेगमपुर, मथनी, मारूफगंज नहर के पास अब भी इनकी मजारें मौजूद हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि पटना सिटी पर मुगलकाल की गहरी छाप है। इस काल की कई ऐतिहासिक मीनारें तथा धार्मिक संस्थान यहाँ आज भी मौजूद है, फिर भी मुगलों के शासन के पूर्व इस नगर का जो गौरवपूर्ण इतिहास रहा है उसका अपना-अलग महत्त्व है।

इतिहास की जानकारी रखनेवाले 92 वर्षीय रामयत्न सिन्हा जो 1947 से पहले स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों से लोहा लेने वाले एवं 1945 दिसम्बर में गांधी मैदान (बाँकीपुर लोन) में रोज शाम को चार बजे से पांच बजे तक राष्ट्रपिता की प्रार्थना सभा में रोज जानेवाले रामयत्न सिन्हा का कहना है कि 1945 में राष्ट्रपिता एवं 1953 में तत्कालीन रेलमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री से मुझे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। रामयत्न सिन्हा ने कहा पाटलिपुत्र के बारे में बस यही जान लीजिये कि शाह आलम के ही जमाने में पूरब दरवाजा और पश्चिम दरवाजा में गेट लगा करता था। संभवत: इसी गेट के कारण मारुफगंज और गुलजारबाग का नाम क्रमश: पूरब दरबाजा और पश्चिम दरवाजा पड़ा।

प्रख्यात लेखक अब्दुल्ला ने अपनी किताब 'तारीखे दाउदी' में 1540 के आसपास ही वन फाटकों के होने का जिक्र किया है कि शहर के इस फाटक की चर्चा 1811 में बुकानन ने अपनी 'पटना रिर्पोट' नामक पुस्तक में भी की है। कहते हैं कि मध्यकाल के दौरान 1540 में यहाँ शेरशाह ने एक किला बनवाया था। शेरशाह के पूर्व बिहार की राजधानी 'बिहारशरीफ' थी। शेरशाह ने अपने शासनकाल के दौरान पटना को अपनी राजधानी बनाया। उस समय भी यह फाटक मौजूद था। 17वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के अंत तक यह फाटक इस प्राचीन शहर का एक हिस्सा बना रहा, लेकिन 19वीं शताब्दी के आते-आते यह लुप्त हो गया। पश्चिम दरवाजा के पास भग्नावस्था में खड़ा 'स्तम्भ' उसी फाटक की निशानी है। रेलवे लाइन के दक्षिण की तरफ पहले गिनती के मकान हुआ करते थे। उत्तर में स्थित मालसलामी उन दिनों 'कस्टम हाउस' हुआ करता था।

आज जहाँ **नगला** है वहाँ बुजुर्ग उमेद खान का मकबरा हुआ करता था, जिसके भग्नावशेष अभी भी वहाँ मौजूद हैं। कहते हैं कि यह स्थान कभी अजातशत्रु द्वारा बनवाया गया था और इसका नाम 'नगरन' था। इसी के पूरब में बाग जफर खाँ की सेनाओं के ठहरने की जगह थी। यह स्थान गर्मी के मौसम के अनुकूल था यहाँ चारों ओर पानी के बड़े-बड़े तालाब हुआ करते थे।

15-16 वीं शताब्दियों में पादरी लोग धर्म प्रचार के लिए पटना से ही होकर जाया करते थे। पादरी की हवेली के पास पादरियों का विश्राम स्थल था, जहाँ एक बार मीर कासिम की फौजों द्वारा कई पादरियों को मार डाला गया था। 31 जुलाई 1773 में यहाँ एक विशाल गिरिजाघर बनाया गया था। इस भव्य और आकर्षक चर्च का निर्माण पेनिश के साइनर टिरेये के कुशल नेतृत्व में हुआ था। इस चर्च के अग्रभाग में तीन विशाल खम्भे हैं। ओसियम ग्रीक शैली में बना पूर्वी भारत का यह प्राचीनतम चर्च है। पटना सिटी अस्पताल के सटे ही **'पटना क्रेथेरियम'** है जो यूरोपियन साम्राज्य का अवशेष है। यह कभी **'हाजी अहमद'** की हवेली हुआ करती थी। इसके भीतर एक ऊँचा **'ओविलिस्क'** बना है। जिसके बारे में कहा जाता है कि इसके भीतर करीब 48 अंग्रेजों को एक साथ मारकर गाड़ दिया गया था। यह काम मीर कासिम के एक नवाब 'शेमरू' के द्वारा किया गया था, जिसने 1763 में अंग्रेजों से युद्ध किया था।

व्यापार के क्रम में मैंने एक जिज्ञासु पत्रकार के रूप में कई अन्य धरोहरों को भी देखा। पटना सिटी चौक के दक्षिण में **मंगल तालाब** और **शेख मट्ठा की गढ़ी** है। 1876 में निमैक क्रिंडल के द्वारा इसकी खुदाई हुई थी, जिसमें पुरानी दीवार एवं नाव के कुछ अवशेष मिले थे। मिस्टर मौंग्लास, जो कभी यहाँ के मजिस्ट्रेट हुआ करते थे, इस तालाब की सफाई करवाई थी और इसके चारों ओर एक खूबसूरत एवं मनमोहक बाग बनवाया था। इसके अलावे पटना का तख्त हरिमंदिर सिखों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह का जन्म स्थान रहा है। यह पटना सिटी की महान धराहरों में से एक है। गाय-घाट महात्मा गांधी सेतु से करीब 15-20 मीटर पूरब में अशोक राजपथ के किनारे एक मंदिर है। इस अति प्राचीन मंदिर को **गौरीशंकर महादेव मंदिर** के नाम से जाना जाता है।

जे. एल. गिल की पुस्तक 'पाटलिपुत्र' में इस मंदिर को अशोक के समय में भी मौजूद बताया गया है, लेकिन तब यह मंदिर छोटा था। यह भी कहा जाता है कि औरंगजेब के कर्मचारियों-पदाधिकारियों ने लोहा के कील से प्रहार कर मंदिर को खंडित करना चाहा था किन्तु ऐसा नहीं कर पाया। इसका ठोस व स्पष्ट प्रमाण गौरीशंकर प्रतिमा के पीछे आज भी एक दो कील देखने को मिलती है।

महात्मा गांधी सेतु से सटे पूरब में गायघाट दक्षिण गली के नाम से एक गली है जो प्राचीन **चैतन्य मंदिर** स्थित है। चैतन्य महाप्रभु हाजीपुर से गया जाते समय यहाँ ठहरे थे एवं विश्राम किया था। बाद में उनके शिष्य निवासाचार्य ने यहाँ इस मंदिर की स्थापना की थी।

हालांकि गुलजारबाग तो जैन मुनियों का सिद्ध क्षेत्र रहा है क्योंकि गुलजारबाग स्टेशन से करीब 110 गज पश्चिम की तरफ स्थित है सैकड़ों वर्ष प्राचीन **जैन दिगम्बर मंदिर**, यहाँ मंदिर सह धर्मशाला भी है। इसी मंदिर में 22 वें तीर्थकार भगवान नेमिनाथजी की पद्मासन मुद्रा में प्रतिमा है। इस मंदिर के निकट ही सड़क और रेलवे लाइन के दक्षिण में बेर के पेड़ों के बीच **सुदर्शन मुनि की टेकड़ी** है। इसी टेकरी के चारों तरफ कभी तालाब हुआ करता था, जिसे **'कमलदह'** के नाम से जाना जाता था, क्योंकि यहां हमेशा कमल (उन दिनों) खिले रहते थे। इसी जगह पर मुनि 'स्थूलभद्र' के 'श्वेत चरण' एक कमरे में विराजमान है। मुनि स्थूलभद्र का संबंध श्वेताम्बरी जैनियों से है। प्रसिद्ध विद्वान आर. एन. चौरसिया ने लिखा है कि यहीं पर इतिहास प्रसिद्ध कौशिक वेश्या का रंगमहल भी हुआ करता था, जिसके अवशेष आज भी यहाँ मौजूद हैं।

पटना सिटी न्यायालय के दक्षिण-पश्चिम में स्थित **बड़ी पटनदेवी मंदिर** इस शहर के पौराणिक मंदिरों में दर्शनीय है। दक्ष के यज्ञ में शिव की वेदी को न देखकर क्रोध के मारे सती ने अपना शरीर त्याग दिया। जब शिव को इस बात का पता चला तो वे सती के अधजले देह को कंधे पर लेकर उन्मत भाव से ताण्डव करने लगे। यह देखकर

भगवान विष्णु ने अपने चक्र से सती के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर गिरा दिया। सती के शरीर के खंड इक्यावन स्थानों पर गिरे, इन्हीं 51 शक्तिपीठों में एक शक्तिपीठ (दक्षिण जंघा) मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में है जो बड़ी पटनदेवी के नाम से विख्यात हैं। सती के शरीर का एक और खंड पटना के 'दीरा' पर स्थित इलाके में गिरा था, जहां छोटी पटनदेवी आज भी मौजूद हैं। पटना ही नहीं बल्कि भारत के अपने ढंग का अनोखा **'जालान कला संग्रहालय'** पटनासिटी में ही है। गंगा किनारे बना **'किला हाउस'** अभी भी बनावट के रूप में अनुपम है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद, नेपाल के महाराज तथा पृथ्वीराज कपूर-जैसी महान् हस्तियाँ तक इस किले को देखने व दर्शन करने के लिए पधार चुकीं हैं।

'तारीखे-दाउदी' के मुताबिक जब 1541 में शेरशाह पटना आया तो अपने यहाँ किला बनवाने का निर्णय लिया था। शेरशाह का कथन था कि यदि यहाँ पर किला बनवाया जाय तो गंगा नदी यहां से दूसर कभी नहीं जायेगी और पटना देश का एक प्रमुख शहर के रूप में जाना जायेगा। किला बनने के बाद पटना देखते देखते (उन दिनों) वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र बन गया। शेरशाह के बाद फिर यह किला मुगल शासकों के अधीन फिर वेस्ट इंडिया कम्पनी ने इसपर अपना कब्जा जमा लिया, फिर कम्पनी से यह किला नवाबों ने खरीद लिया। अब इसका रंग-रूप शेरशाह किले जैसे तो नहीं, बल्कि इसका पोस्ता अभी भी शेरशाह का ही बनवाया हुआ है। इसी तरह अशोक राजपथ में अवस्थित खुदावक्श लाइब्रेरी जहाँ प्राचीन ग्रंथों का मंजूर है, जहाँ देश के महान् से महान् हस्तियाँ विरासत एवं धरोहर के रूप में देखने आप भी आते-जाते रहते हैं। इसी तरह पटना की ऐतिहासिक विरासत एवं धरोहरों में **पटना संग्रहालय**, **गोलघर**, **मुख्य सचिवालय**, **शहीद स्मारक** एवं 1926 में स्थापित **पटना उच्च न्यायालय**, **खानकाह मुजीषिया** (फुलवारीशरीफ) के अलावे <u>पाटलिपुत्र कब्जा स्तुप</u> (पटना) भी धरोहरों में शामिल है।

अंग्रेजों ने सर्वप्रथम पटना की धरती पर 1620 में पाँव जमाया। 1761 में आचरकूट सेनापति लेकर पटना आया। आते ही मीरकासिम के साथ उसकी नोक-झोक हुई। यह यहाँ से हटा दिया गया और उसकी जगह पर 'एलिस' आया। एलिस ने अपनी सेना के बल पर पटना को कब्जे में कर लिया पर नवाब ने शीघ्र ही अंग्रेजों के हाथ से पटना छीनकर उन सबों को कैद कर लिया। अंग्रेजी सेना बंगाल से नवाब की सेना को परास्त करती हुई चली आ रही थी। उसने नवाब को मुंगेर पर कब्जा जमा लिया। जब पटना में मीरकासिम को यह पता चला तो उसने सब अंग्रेज कैदियों को कत्ल करवाकर एक कुँए में डाल दिया। यहाँ उनका स्मारक 'अगमकुआँ' है। 1836 में सर्वप्रथम पटना में गंगा में स्टीमर सेवा आरंभ हुआ। 1825 में पटना जिला कायम किया गया। एक समय पर जब पटना सिटी में दरी, कालीन तैयार होते थे। यहाँ कपड़ों पर कामदानी और जरदोजी का भी काम होता था। यहाँ पायदान, इतरदान और गुलाबपोश बनाये जाते थे। इसके बाद पटना का **सैंट जोसफ स्कूल** जो एक जमाने में यह यूरोपियों की शिक्षा के लिए पटना का सबसे पुराना स्कूल के रूप में 1863 में निर्माण हुआ। इसका स्कूल कुर्जी का सेंट माइकल था, जहाँ मैट्रिक तक पढ़ाई होती थी इसका सम्बन्ध उन दिनों कैम्ब्रिज यूनिर्वर्सिटी से था और तीसरा यूरोपियन स्कूल खगौल में था जो वेस्ट इंडियन रेलवे के प्रबंध में था। बिहार के अन्दर अनाज की जो मंडियां पहले से थीं उसे अंग्रेजों ने उखाड़ दिया और 'करनलगण तथा मारूफगंज नामक दो नयी मंडियाँ बना दी।

(शेष अगले अंक में)

रामानुजाचार्य का भक्ति के विकास में योगदान

श्री युगल किशोर प्रसाद

हिन्दी के वयोवृद्ध प्रतिष्ठत साहित्यकार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से सम्मानित, प्रकाशित रचनाएँ- **एकलव्य** (नाटक), **श्रेय से प्रेय** (उपन्यास), **कुम्हरे की बतिया** (कहानी संग्रह), **संहिता** (निबन्ध संग्रह)

श्रीमद्भगवद्गीता की भक्ति की धारा को सर्वजन सुलभ बनाने का कार्य रामानुजाचार्य ने 11वीं शती में किया था। उन्होंने जातिगत ऊँच-नीच के भेद को भुलाकर गृहस्थों, संन्यासियों तथा वैरागियों को भक्ति के द्वार से परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया। कहा जाता है कि उनके 84 शिष्य हुए, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत मे भक्ति की परम्परा का प्रचार-प्रसार किया। मध्यकालीन भारत में आचार्य रामानन्द, कबीर, तुलसी, रैदास आदि जितने भी सन्त हुए, जिन्होंने सामाजिक समरसता के लिए प्रयास किया, वे सभी मूल रूप से रामानुजाचार्य की भक्ति-परम्परा से जुडे हुए थे। हलाँकि यह भी सच है कि कालक्रम से रामानुजाचार्य की परम्परा में रूढियाँ बाधक होने लगीं तो उत्तर भारत में रामानन्दाचार्य ने चतुर्भुजी उपासना परम्परा के स्थान पर द्विभुजी उपासनी परम्परा की शुरुआत की और रामावत सम्प्रदाय का सूत्रपात हुआ। यहाँ रामानुजाचार्य की मौलिक परम्परा पर प्रकाश दे रहे हैं वयोवृद्ध साहित्यकार श्री युगल किशोर प्रसाद।

देवतत्त्व एवं भू-तत्त्व के संतुलित योग का परिणाम सृष्टि है। देवतत्त्व में हम भारतीयों का अटल विश्वास है, भारतीय संस्कृति की यही सबसे बड़ी विशेषता है। देवतत्त्व और भू-तत्त्व के पृथक्-पृथक् अस्तित्त्व से मानव जीवन एकांगी, अधूरा रह जाएगा। इन दोनों तत्त्वों के सम्यक् संतुलन में ही जीवन का पूर्ण विकास निहित है। और यही जीवन का उच्चतम आदर्श भी है। भक्ति का कार्य देव तत्त्व और भू-तत्त्व में सन्तुलन स्थापित करना है।

देवतत्त्व यानी ईश्वर, भू-तत्त्व यानी भूलोक के चेतन-अचेतन प्राणियों की मनोवृत्तियाँ। देवतत्त्व मानव-वृत्तियों का माध्यम है। भक्ति, देवतत्त्व यानी ईश्वर की प्राप्ति का सरलतम मार्ग है। इसके अंतर्गत सभी पूजा-पद्धतियाँ आती हैं। इन पद्धतियों का लक्ष्य आत्मसा क्षात्कार है। भक्ति आत्म दर्शन का सुगम मार्ग है, भक्ति से आत्म दर्शन सुलभ हो जाता है।

भज् धातु से निष्पन्न भक्ति में भजन की प्राथमिकता है। नवधा भक्ति में भजन, इष्ट आराध्य को भजना भक्ति का सुगम उपाय है। देवर्षि नारद के अनुसार भक्ति परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। उनका निम्नस्थ कथन अवलोकनीय है-

सा त्वस्मिन् परमसत्यप्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।"

पराशरसूत्र में 'अनुराग' तथा गर्ग के कथादि में 'अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है।

भक्ति मार्ग का प्रमुख स्रोत (सम्प्रदाय) भागवत धर्म है जिसका उदय ईसा पूर्व 1400 वर्ष के पहले अनुमानित है। भागवत धर्म अपनी आरंभिक अवस्था में एकेश्वरी भक्ति का प्रतिपादक था, क्योंकि उसके पूर्व सांख्य एवं योग मत प्रचलन में थे, जिसका प्रभाव स्वभावतः उसपर पड़ा था। द्वितीय अवस्था में ब्राह्मण धर्म के प्राधान्य के कारण इसमें बहुदेवोपासना का समावेश हुआ। ईसा की आठवीं शताब्दी में शांकर मत के प्रसार एवं कर्मकाण्ड की प्रबलता से भागवत धर्म की गति कुण्ठित हो गई थी, किन्तु उसके बाद रामानुजाचार्य ने इसका पुनरुद्धार किया। उनका काल 1037 से 1137 ई. माना जाता है। इन्होंने शंकराचार्य द्वारा स्थापित मायावाद के विरुद्ध अनेक आक्षेप उपस्थित किए। इनकी दृष्टि इतनी पैनी और स्पष्ट थी कि इन्होंने न तो वेदों के कर्मकाण्ड तथा विधि-विधान को नकारने की जरूरत समझी और न यही प्रयास कि पुराण की गाथाओं को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाय। इन्होंने भक्तिमार्ग की संस्तुति करते हुए सिर्फ भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के सिद्धान्त को प्रचारित करने का प्रयास किया। साथ ही, उन्होंने यह भी बताया कि उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र की मुख्य शिक्षा भी भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्ति ही है। कर्मकाण्ड, बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार के कारण भक्ति-धारा कुछ समय के लिए क्षीण अवश्य हुई, रामानुजाचार्य ने भक्ति को फिर से जीवित किया।

आज जन साधारण में भक्ति के प्रति जो आस्था व्याप्त है उसके मूल में रामानुजाचार्य का भक्ति संबंधी धारणा ही है। उन्होंने यह माना कि भक्ति ईश्वर तक पहुंचने का सुगम मार्ग है। ये अपने युग के प्रतिनिधि थे। इनके लिखे सद्ग्रंथ हैं-वेदान्तसार शरणागतिगद्यम्, वेदान्तसंग्रहण, श्रीरंगगद्यम्, श्रीवैकुण्ठगद्यम्, नित्यग्रंथ और वेदान्तदीपक। इसके अतिरिक्त उन्होंने ब्रह्मसूत्र (श्रीभाष्य) और भगवद्गीता पर अपनी महत्त्वपूर्ण टीका लिखी। उनकी महत्ता को लक्ष्य करते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने सही टिप्पणी की है-

''रामानुज धार्मिक अन्तःप्रेरणा पर पूरा-पूरा भरोसा करते हैं और उन्होंने एक ऐसे गम्भीर धार्मिक विचार का प्रतिपादन किया जो मनुष्य के प्रति ईश्वर की सृष्टि के द्वारा तथा अवतारों के द्वारा अभिव्यक्त करता है।

रामानुजाचार्य ने आलोचना की 'प्रपत्तिमूलक' धर्म की शिक्षा एवं आचार्यों द्वारा मिली शिक्षा की सहायता से उन तत्त्वों का विकास किया जो उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र के अन्दर ही गुप्त पड़े रहते। 'प्रपत्ति' ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण करने का दुर्लभ भाव है। यह भक्ति की पराकाष्ठा भी है। यह मोक्ष-लाभ का सबसे उपयुक्त साधन है। यह वार्ता उच्च, निम्न सबके लिए खुला है, जबकि भक्ति ऊपर के तीन वर्णों तक ही सीमित है। शूद्र को मात्र सेवा करना है। शंकराचार्य के विपरीत उन्होंने वेदों के आस्तिकतापूर्ण विचारों को दुहराया है। उनका मानना है कि केवल शास्त्रों के शब्दों को समझ लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक की आवश्यकता सद्ज्ञान के लिए होती है। उनके शब्दों में, यथार्थता का साक्षात्कार जो इसका तर्क-सिद्ध ज्ञान नहीं है यह ऐसी समाधि में ही संभव है जो भक्ति का रूप धारण करती है।''

श्रीमद्भगवद्गीता के इस कथन पर कि 'भक्तिपूर्वक जो कुछ भी पत्र-पुष्प मुझे अर्पण किया जाय मैं उनसे प्रसन्न हो जाता हूँ', पर टिप्पणी करते हुए रामानुज ने लिखा है, ''यद्यपि मैं अपने स्वाभाविक निस्सीम तथा अपार आनन्द में रहता हूँ तो भी मैं उक्त उपहारों से प्रसन्नता लाभ करता हूँ, मानो मेरी इच्छा की परिधि से बाहर का कोई प्रिय पदार्थ मुझे अर्पित किया गया है।'' ईश्वर अपने भक्तों के स्वेच्छापूर्वक अर्पित किये गये उपहारों से प्रसन्नता-लाभ करने को उद्यत हैं, किन्तु व्यवहार में उसी प्रकार अन्यों के दुःख अथवा क्लेशों से अपने को अभिभूत करने के लिए उद्यत नहीं है। यह बड़ा विरोधाभास है। आस्तिक होने के कारण रामानुज का विश्वास है कि मोक्ष, ज्ञान और कर्म के द्वारा नहीं, वरन् 'भक्ति और ईश्वर' के प्रसाद (दया) के द्वारा संभव है। धर्मशास्त्रों में ज्ञान से तात्पर्य ध्यान और निदिध्यासन, अर्थात् एकाग्रतापूर्वक समाधि से है। रामानुज ने माना कि ब्रह्म एक हैं किन्तु उसके दो अंग हैं- जड़ जगत् और आत्मा। इसलिए उनका दर्शन विशिष्ट रूप से अद्वैत या विशिष्टाद्वैत दर्शन कहा जाता है। उन्होंने ब्रह्म को पूर्ण तथा अन्तर्यामी माना है। वह ब्रह्म जीवों को उनके शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख प्रदान करता है। वह कर्म-फलदाता है। वह सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। उन्होंने ब्रह्म को स्रष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता कहा है, जो विश्व का निर्माण करता है। जिस प्रकार मकड़ा अपनी सामग्री से जाल बुन लेता है उसी प्रकार ईश्वर स्वयं ही सृष्टि कर लेता है। वह जीवों को उसके कर्मानुसार सुखी या दुःखी बनाता है। उनका मानना है कि जिस प्रकार दही दूध का रूपान्तरण है उसी प्रकार विश्व ब्रह्म का रूपान्तरण है।

रामानुजाचार्य ने ब्रह्म को उपासना का विषय माना है। वे मानते हैं कि ब्रह्म भक्तों के प्रति दयावान् है। वह अनेक प्रकार के गुणों, जैसे, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति तथा तेज इत्यादि से युक्त है। शंकराचार्य ने निर्गुण की व्याख्या करते हुए बताया कि जो गुणरहित हो वह निर्गुण है, किन्तु रामानुज की दृष्टि में, जो जगत् के गुणों से मुक्त हो, वह निर्गुण है, यद्यपि उसमें दया, दाक्षिण्यादि गुण विद्यमान रहते हैं। साधक को ईश्वर अथवा ब्रह्म की कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को सत्य माना था, तथा ईश्वर को असत्य कहा था, किन्तु रामानुजाचार्य के ब्रह्म और ईश्वर दोनों एक ही हैं।

रामानुज ने ईश्वर को एक माना तथा बताया कि भक्तों की मुक्ति एवं सहायता को ध्यान में रखकर ईश्वर अपने को पाँच रूपों में प्रकाशित करता है-

1. अन्तर्यामी- यह ब्रह्म का प्रथम रूप है जो सभी जीवों के अंतःकरण में प्रवेश करके सभी प्रवृत्तियों को गति प्रदान करता है।

2. नारायण या वासुदेव - यह ब्रह्म का दूसरा रूप है, जिसे देवतागण वैकुण्ठ में देखते हैं।

3. व्यूह- जब ईश्वर स्रष्टा, संरक्षक तथा संहारक रूप में प्रकट होता है, तब उसका रूप व्यूह कहलाता है। इस रूप के चार भेद होते हैं- (क) वासुदेव (ख) संकर्षण (ग) प्रद्युम्न (घ) अनिरुद्ध।

4. अवतार- जब ईश्वर इस पृथ्वी पर मनुष्य या पशु के रूप में प्रकट होता है तो वह

'अवतार' या 'विभव' कहलाता है।

5. अर्चावतार- कभी-कभी ईश्वर भक्तों की दया के वशीभूत मूर्तियों में प्रकट होता है। यह अवतार का एक विशिष्ट रूप होने के कारण अर्चावतार कहलाता है।

रामानुज ने जीवात्मा के तीन प्रकार माने हैं- मुक्त जीव, ब्रह्मजीव तथा नित्य जीव। ऐसे जीव जिनका सांसारिक जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है, ब्रह्म जीव कहलाते हैं। ये जीव मोक्ष की प्राप्ति के लिए, प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे जीव जो सब लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण करते हैं, मुक्त जीव कहलाते हैं। नित्य जीव वे हैं जो संसार में कभी नहीं आते हैं। उनका ज्ञान कभी क्षीण नहीं होता है।

शंकराचार्य के विपरीत रामानुज ने जगत् को सत्य माना है। वे सत्कार्यवाद के दो भेदों में परिणामवाद को मानते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार कारण का पूर्णतः रूपान्तर कार्य के रूप में होता है। जगत ईश्वर की शक्ति प्रकृति का परिणाम है। जिस प्रकार ईश्वर सत्य है, उसी प्रकार जगत् भी सत्य है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि जगत् की वस्तुएँ नित्य हैं। जगत् सत्य है किन्तु जगत् की वस्तुएँ अनित्य हैं। ईश्वर जगत् का उपादान कारण इसलिए है कि वह संकल्प मात्र से अनायास जगत् का निर्माण करता है।

रामानुजाचार्य ने माना कि कर्म और ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के दो साधन हैं। कर्म मार्ग के बारे में उनका विचार है कि मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति के लिए यही आवश्यक है कि वह अपने पूर्णाश्रम धर्म से संबंधित सारे कर्तव्यों का पूरी तरह पालन करें। मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग उन्होंने भक्ति को ही माना है। मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान और कर्म पर इसीलिए बस दिया है कि उनसे भक्ति का उदय होता है। भक्ति और ईश्वरोयासना ही मोक्ष प्राप्ति के वास्तविक साधन हैं। ईश्वर के प्रति अन्नय प्रेम भाव ही भक्ति है। इस प्रेम भावना को भक्ति, उपासना, ध्यान आदि नामों से संज्ञापित किया जाता है। गहरी भक्ति और शरणागति से प्रसन्न होकर ईश्वर जीव के संविट कर्म एवं अविद्या का नाश कर देता है। इसका फल यह होता है कि जीव जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। उनके अनुसार मोक्ष मृत्यु के उपरान्त ही शिव है। शंकर, सिख, बौद्ध इत्यादि की मान्यताओं के विपरीत रामानुज विदेह मुक्ति के समर्थक हैं। वे मोक्ष को ब्रह्म के साम्य प्राप्त करने की अवस्था मानते हैं। शंकर मानते हैं कि मोक्ष का अर्थ आत्मा और ब्रह्म का एकीकरण है, किन्तु रामानुज मानते हैं कि आत्मा सीमित है और यह असीमित ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकती। मुक्त आत्मा ईश्वर जैसी हो जाती है। वह सभी दोषों और अपूर्णताओं से मुक्त होकर ईश्वर से साक्षात्कार ग्रहण करती है।

रामानुज के प्रतिपादन में भक्ति की भावना इतनी प्रबल है कि वह मुक्त आत्मा में विलीन नहीं मानते। वे मानते हैं कि भक्त का सबसे बड़ा आनंद है ईश्वर की अनंत महिमा का अनवरत ध्यान, जिसके लिए उसका अपना अस्तित्व आवश्यक है। भक्ति के लिए उन्होंने 'विमोक' एवं 'आर्जव' जैसी क्रिया का विवेचन किया है। 'विमोक' अर्थात् अन्य सबसे सम्बन्ध विच्छेद करके केवल ईश्वर की प्राप्ति के प्रति प्रबल इच्छा, अभ्यास, निरन्तर ईश्वर चिन्तन क्रिया अर्थात् दूसरों का भला करना, कल्याण

अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति हितकामना, सत्य व्यवहार। 'आर्जव', अर्थात् सच्चरितता, दया, अहिंसा, दान, अथवा दाक्षिण्य अनवसाद अर्थात् सदा प्रसन्न रहना और आशा। रामानुजाचार्य ने भक्ति को केवल भावुकता नहीं माना, बल्कि उसके अंतर्गत संकल्प शक्ति तथा बुद्धि के परीक्षण का भी समावेश किया है। उनके अनुसार भक्ति ईश्वर का ज्ञान तो है ही, उसकी इच्छा के प्रति वशीभूत होना भी है। भक्ति अपनी समस्त मानसिक शक्ति तथा हृदय द्वारा ईश्वर के साक्षात्कार में पर्यवसित होता है।

आचार्यजी ने ब्रह्म को उपासना तथा सेवा के योग्य माना है। उनके ही प्रयत्नों-प्रयासों से ईश्वर के प्रति भक्ति और आत्म समर्पण की धारा उस युग में चारों तरफ फैल गई। उनके आविर्भाव ने वैष्णव धर्म के प्रसार में नवीन गति भर दी। इनके मत ने वल्लभ, चैतन्य, रामानन्द, कबीर, नानक इत्यादि संतों तथा मध्य वैष्णवीय उपासना तथा भक्ति आंक्षेलन को अधिकांश में प्रकाशित किया है। रामानुजाचार्य का धर्मान्दोलन इस दृष्टि से आधुनिक युग की भक्ति पद्धति वाममुखी है। इन्होंने ब्राह्मणों के लिए वेदानुमूल भक्ति तथा ब्राह्मणों के लिए तान्त्रिक एवं पौराणिक भक्ति नामक दो भेद किए हैं। उन्होंने तारक मन्त्र, 'ॐ नमो नारायणाय' का प्रचार किया है। इसी परम्परा को रामानन्द ने ग्रहण किया तथा रामोपासना के रूप में द्विभुजी परम्परा को युगानुरूप उत्तर भारत में खूब प्रचार किया। रामानन्द ने अपनी भक्ति में ब्राह्मण एवं अब्राह्मण-जैसा कोई भेद नहीं रखा था। इसीलिए जब भक्ति दक्षिण के पाषाणी पठारों को पार कर उत्तर की हरी-भरी धरती का अभिसिंचन करने लगी तो उत्तर में दार्शनिक रूप ही अधिक उभरा। रामानुजाचार्य के लगभग डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही वैष्णवों में दो स्वतंत्र मत हुए 'टेकलै' और 'बड़कलै'। इनमें प्रपत्ति के विषय में गहरा मतभेद है। 'टेकलै' का प्रवर्त्तन पिल्लै सोकाचारीय है। इसके अनुसार प्रपत्ति के लिए जीव को कर्म करने की आवश्यकता ही नहीं होती बल्कि भगवान शरणागत जीवों का उद्धार स्वयमेव कर देते हैं। जैसे मार्जार किशोर की भक्ति। 'बड़कलै' के प्रवर्तक वेदान्तदेशिक हैं। इसकी प्राप्ति के लिए कर्मों के अनुष्ठान को परम आवश्यक माना गया है, जैसे कपि किशोर की भक्ति।

तुलसी, सूर की रचनाओं में इन्हीं दोनों भक्ति पद्धतियों का प्रभाव दीखता है। रामानुज ने भक्ति के प्रसार में अपना सर्वस्व लगा दिया। विष्णु अर्चना और भक्ति तत्त्व के प्रचार में इनके उद्यम और उत्साह का अन्त ही नहीं था। इस प्रकार आलवारों के भक्ति रस पूरित कार्यों के प्रचार के कारण भक्ति तमिल देश में रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद रूपी वृक्ष लगा और समस्त भारत वर्ष में अपनी शाखा-प्रशाखा का विस्तार कर सकी। उन्होंने 'श्रीसम्प्रदाय' के माध्यम से भक्ति का प्रचार करने का कार्य किया है। जाहिर है, भक्ति के विकास में रामानुजाचार्य का योगदान अप्रतिम है। भक्ति आज जिस रूप में प्रचलित है, यह रामानुजाचार्य की देन है। सूर और तुलसी की भक्ति रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति है।

❖

राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी

आलोक कुमार

गतांक से आगे

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने राष्ट्र पद की अर्थ-संरचना के तीन आधारों का निर्देश किया है- (1) भूभाग, (2) उसपर बसनेवाले जन और (3) जन की संस्कृति। अनादिकाल से संस्कृति की अभिव्यक्ति युगीन साहित्य में होती चली है। संस्कृति में राष्ट्रीय स्तर के मनुष्यों के उच्चतम भावों और विचारों की ऊर्जा होती है। इसका संचय समकालीन साहित्य में किया जाता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह भावों की गाड़ी है। इसकी गति ध्वनिमय है। सौभाग्य है कि हमारे पास प्राग्वैदिक काल से ही कला और संस्कृति गति और प्रगति तथा अगति के संस्कार विद्यमान हैं। प्रगति के अवरोधक तत्त्व अगति दर्शाते हैं। इनके विरुद्ध कालमान की अंत:संघर्षी ऊर्जा राष्ट्रीय अस्मिता का प्रमाण लेकर साहित्य के इतिहास में खड़ी है।

> भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और माध्यम हमेशा प्रयोग करनेवालों की मानसिकता को दर्शाता है। भारतीय भाषाओं को यदि हम देखें तो तो संस्कृत और हिन्दी को छोड़कर अन्य किसी भी भाषा को इतना व्यापक क्षेत्र नहीं मिल सका। संस्कृत का क्षेत्र सुदूर दक्षिण से लेकर हिमालय-पर्यन्त सम्पूर्ण भारत रहा, किन्तु हिन्दी भी भारत की आधी से अधिक जनता द्वारा समझी जानेवाली भाषा के रूप में गौरव पाती रही। सरहपाद से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी में घनेरो साहित्य लिखे गये, जिसने राष्ट्रीयता और मानवता का पोषण किया। यही कारण है कि हिन्दी राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा मानी गयी। यहाँ लेखक ने इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर प्रकाश डाला है। -सं.

1. आदिकाल- हिन्दी भारतवर्ष की प्रमुख भाषाओं में अग्रगण्य है। इसका भाषिक प्रमाण सरहपाद की रचनाओं से ही माना जाता है। हिन्दी के आदिकालीन नाथ और सिद्ध साहित्य में हमारी अस्मिता का धारदार प्रमाण पृथ्वीराजरासों में मिलता है। मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान की लड़ाई में बन्दी पृथ्वीराज के साथ उनके कवि चन्दवरदायी भी गजनी गये थे। पृथ्वीराज की आँखें फोड़ दी गयी थी। कविचन्द ने कहा इस वीर की हत्या के पूर्व शब्दवेधी वाण चलाने के इनके चमत्कार को देख लें। गोरी को कौतूहल हुआ। सभा सज गयी। सात तवों के रखकर उनके भेदने का लक्ष्य था। गोरी उत्सुक थे। चंद ने एक दोहा कहा-

चार बाँस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण।
ऐते पै सुल्तान है मत चूको चौहान॥

पृथ्वीराज ने शब्दों के प्रमाण की दूरी के अनुकूल प्रत्यंचा चढ़ाई। बाण छूटते ही गोरी को लगे। इधर चंद ने पृथ्वीराज के और पृथ्वीराज ने चंदवरदायी के गले पर एक साथ वार किया और अस्मिता के लिए

प्राण गँवाये। राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी का यह ज्वलंत प्रमाण है। हिन्दी का यह रूप राजस्थानी साहित्य का अंश है।

राष्ट्रीय अस्मिता के लिए कवि विद्यापति और महाराज शिवसिंह का आत्मिक सम्बन्ध और युद्ध काल में उनके साथ कवि के सहयोग का प्रमाण कीर्त्तिलता और कीर्तिपताका में द्रष्टव्य है।

भक्तिकाल- मध्यकालीन हिन्दी और राष्ट्रीय अस्मिता। हिन्दी भाषा के डिंगल रूप में जगनिक का आल्हाखण्ड और पिंगल रूप में आध्यात्मिक राग का धरातल अवगाहनीय है। यह काल भारतीय इतिहास का इस्लामकालीन युग है। इस युग में राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न चार रूपों में हिन्दी की कोख में आया। भारत की धर्मप्राण संस्कृति, वैदिक संस्कृति को अपना रीढ़ मानती है। इसमें दो संस्कृतियों का टकराव है। इस्लाम धर्म ने वैदिक धर्म पर जेहाद बोला। इसके पूर्व आर्य और अनार्य संस्कृतियों के अन्तर्मिलन से भारतीय संस्कृति ने अपना रूप सामासिक बना लिया।

वैदिक साहित्य में हमारी अस्मिता, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के क्रम में अध्यात्म की ऊँचाई तक प्रगत हुई। वेदान्त सूत्र सभी उपनिषदों का सार है। इसके प्रथम व्याख्याकार आचार्य शंकर हुए। इन्होंने जनमानस की विकृतियों को सुधारने के लिए "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का सूत्र दिया। लगभग चार शताब्दियों तक निवृत्ति मार्ग पर चलकर जनमानस नैष्ठिक मार्ग पर चला। इस काल तक योग-दर्शन की हठ-साधना, न्याय-दर्शन और सांख्य दर्शनों की सृष्टि मीमांसा तथा वेदान्त का ब्रह्मवाद व्यक्ति-व्यक्ति के लिए साधनात्मक आदर्श लेकर प्रकट हुआ। शांकर वेदान्त की माया के मिथ्यात्व कथन को अमान्य करते हुए वैष्णव आचार्यों के चार सम्प्रदाय प्रकट हुए।

नारि मुए गृहसंपति नासी।
मूड़ मुडाय भये सन्यासी।।

के सामाजिक गिरावट को देखते हुए आचार्य रामानुज, आचार्य विष्णुस्वामी, आचार्य मध्व और आचार्य निम्बार्क ने प्रवृत्ति सिद्धान्त को प्रस्तावित किया। इस सिद्धान्त में पौराणिक अवतारवाद की प्रतीक विद्या के आधार पर लीलागायन के सिद्धान्त और जीवनपद्धति को उसी भावभूमि पर रंजित करने की आस्था प्रकट की गयी। इन आचार्यों ने राष्ट्रीय अस्मिता को वेदान्त दर्शन के लिए विविध वादों में प्रतिष्ठित किया। ब्रह्म की सत्यता सबने स्वीकार की।

ब्रह्म के दो रूप प्रकट हुए- निर्गुण और सगुण। दोनों में भाव योग की दिशाएँ समान हैं। भगवत् प्रेम की अर्न्तमुखी धारा में निर्गुण ब्रह्म की आराधना आरम्भ हो गयी। लीलागान में भी मर्यादा मार्ग और प्रेममार्ग का अवलंब जीवमात्र को अर्न्तमुखी बनाकर भगवदाश्रित कर दिया।

राम नाम धन लगै न काई।
प्रातः राम नाम मुख टेटी बाढ़त सदा सवाई।

इस आत्मबल ने नैष्ठिक साधनात्मक जीवन को व्यावहारिक बना दिया। ऐसे वैष्णव संत का मोहयुक्त मानस परोपकारी बनकर जग का मंगलतीर्थराज बन गया। उनकी भक्ति-चेतना गंगा की धारा, ब्रह्म विचार का ज्ञान और उसका प्रचार अन्तःसलिला सरस्वती की धारा है। विधि-निषेध की शिक्षा से कर्मकथा यमुना की धारा है। गोस्वामी तुलसीदास ने वैष्णव के प्रचार-प्रसार से सामाजिक जीवनधारा का वैमल्य **रामचरिमानस** के महीसुर प्रसंग में प्रकट किया है।

परब्रह्म के रक्षक और रंजक दो रूप प्रकट हुए। फलतः भक्ति की आस्था इतनी प्रबल हुई कि आत्मबली अस्मिता से भारतीय समाज आह्लादित हो गया। पूरा इस्लामिक भारत गुलाम वंश से लेकर मुगलवंश तक के अवसान तक राम और कृष्णमय हो गया।

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल पावन आचार और उदार विचार से, व्यष्टि से लेकर समष्टि तक को भारतीय मानस की अन्तर्मुखी अस्मिता को अडिग रूप दे गया।

मनीषी कल्प महात्मा तिलक ने गीता-रहस्य लिखकर राष्ट्रीयता की अस्मिता के धर्मशास्त्रीय पक्ष को उभारा है।

स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।

इस उद्घोष के कारण वे वर्षों तक वर्मा के मांडले जेल में कैद रहे। वहीं गीता-रहस्य लिखा गया।

महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह और अहिंसा के व्यावहारिक पहलू को दक्षिण अफ्रिका में प्रयोग करके सफलता पायी। गाँधीवाद का नेतृत्व भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को भी प्राप्त हुआ। फलत: काँग्रेस का नरम दल उनके नेतृत्व में प्रकट हुआ। काँग्रेस का गरम दल 1942 ई. की सशस्त्र क्रान्ति में प्रकट हुआ। अंग्रेजों ने समझा कि 'फूट डालो, राज्य करो' की नीति अब नहीं चलेगी। फलत: 1947 ई. के 15 अगस्त को भारतीय अस्मिता प्रकट हुई। राजगोपालाचारी अंग्रेजी शासन के अंतिम गवर्नर जेनरल हुए।

पंडित जवाहर लाल के नेतृत्व में सरकार बनी; संविधान सभा बनी। संविधान में राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठा। पूरे भारतवर्ष के विविध प्रान्त के प्रतिनिधियों ने गंभीर तर्क-विर्तक किये। अंतत: हिन्दीभाषी प्रदेश से अधिक जोरदार समर्थन अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से हुआ। राष्ट्र की विविध प्रान्तीय भाषाओं में चौदह अन्य भाषाओं को स्वीकृति मिली। हिन्दी सर्वमत से राष्ट्रभाषा बनी। 22 जनवरी 1950 को संविधान का आत्मार्पण हुआ। हिन्दी का दायित्व बढ़ गया। हिन्दी के कवियों, विविध विधा के लेखकों और राजनेताओं का दायित्व बनता है कि संविधान की आत्मा और जनतन्त्र की अस्मिता के अनुरूप भारत के जन-जन में इस अनुसंध ान ने स्वर को मन्द नहीं होने दिया।

महात्मा तिलक ने उद्घोष किया था- स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। पूरे भारत वर्ष में नव-चेतना के प्रसार के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता हुई। भूमिगत आन्दोलन चलाने के लिए मदन मोहन मालवीय ने हिन्दी में संकेत भाषा का गठन किया। उसे 'ममोमा' कहा जाता है। सभी प्रान्त के भूमिगत सत्यग्रहियों ने हिन्दी भाषा का व्यवहार किया। यही कारण है कि संविधान सभा ने हिन्दी की महत्ता समझी और उसपर राष्ट्रीय अस्मिता के संवहन का दायित्व दिया।

डा. आलोक कुमार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी.एन.एम,

दुर्गुणों का दुष्परिणाम

रावण युद्धभूमि में मरा हुआ पड़ा था। उसके मृत शरीर को देखने के पश्चात् लक्ष्मणजी लौटे; लौटकर आने पर उन्होंने बताया कि रावण के शरीर में छलनी की तरह असंख्य छिद्र हो गये हैं। दल के वानरों ने जब लक्ष्मणजी से पूछा कि इतने छेद कैसे हुए? तो लक्ष्मणजी इतना ही कह सके कि श्री राम के तीरों की वर्षा से ही ऐसा हुआ होगा।

तब वे सभी प्रभु रामचन्द्रजी के पास गये। भगवान् राम उनका प्रश्न सुनकर मुसकराये। उन्होंने कहा, ''तीरों ने नहीं, रावण के दुर्गुणों ने उसके शरीर को छेदा है, और वह महाबलशाली योद्धा अपने पापों के फलस्वरूप मरा है। हे लक्ष्मण! न शस्त्र किसी को मारते हैं, न शत्रु। मनुष्य स्वयं अपने दुर्गुणों से जर्जर होता रहता है और पाप का घड़ा भर जाने पर स्वयं ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।''

संकलन : मगन देव नारायण सिंह

शोध-पत्र

'पूषा' रूप में सूर्य

❑ डा. किरण कुमारी शर्मा

ऋग्वेद के देवता भिन्न भिन्न प्राकृतिक दृश्यों के प्रतीक माने गये हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से या सांकेतिक रूप से मानवमात्र का संरक्षण करते हैं और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। सूर्योदय के साथ उदित होनेवाली उषा के भाई के रूप में पूषा का वर्णन मार्मिक है। ऋग्वेद में देवताओं के समूह विश्वेदेव के अन्तर्गत पूषन् भी एक देवता हैं जो सूर्य के ही एक स्वरूप माने गये हैं। इन्हें रात्रिदेवी का पुत्र और उषा का भाई कहा गया है। ये मार्ग में लोगों का संरक्षण करते हैं और उन्हें चोरों, लुटेरों और बदमाशों से बचाते हैं। ऋग्वेद के आठ सूक्तों में इनका वर्णन उपलब्ध है। इसी पूषा देवता के सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश यहाँ दिया जा रहा है। यह आलेख विशुद्ध शोध-पत्र की शैली में है।

ऋग्वेद संहिता के आठ सम्पूर्ण सूक्तों और चौदह मन्त्रों में 'पूषा' देवता की स्तुति की गई है।[१] 'पूषा' के पाँच सूक्त ऋग्वेद के छठे मण्डल में उपलब्ध होते हैं जो भारद्वाज गोत्रियों के हैं। इसे हिलेब्राँट ने 'लघु पूषन् संहिता' की संज्ञा दी है।[२] विष्णु की अपेक्षा पूषा का स्थान कुछ ऊँचा है, कारण मन्त्रों की संख्या विष्णु की अपेक्षा अधिक है।

'पूषन्' शब्द की व्युत्पत्ति पुष् धातु के हुई है जिसका अर्थ है- पोषक, पुष्ट करनेवाला। सायणाचार्य के भाष्य में पूषा को जगत्पोषक पोषचित या पोषक देव माना गया है।[३] ब्राह्मणवाक्यों से भी इसी अर्थ को पुष्टि मिलती है।[४] दाण्डेकर तथा कार्पिण्टियर की (व्याख्या) व्युत्पत्ति के अनुसार 'पूषन्' का अर्थ 'पशुओं के अधिग्राहक देवता' हैं।[५] यास्क के अनुसार जब सूर्य तेज

'पूषा' रूप में सूर्य

1. ऋ. - 1/42; 1/138
2. हिलेब्रॉण्ट भी.एम. 11 पेज-330
3. मैकडॉनेल भी.एम. पेज-37
4. तै. ब्राह्मण 1/6/2/2
5. दाण्डेकर New Indian Antiquary V, 142 p.-61

से पूर्ण होकर रश्मियों को धारण करते हैं तब उनको 'पूषा' कहते हैं।[६] स्वामी दयानन्द के अनुसार- जो देवता अपनी व्याप्ति से समस्त पदार्थों को पुष्ट करते हैं उन्हें 'पूषा' कहा गया है।[७] पाश्चात्य विद्वान् 'पूषा' को सौर देवता मानते हैं। ग्रिसवोल्ड के मतानुसार अग्नि और सोम ब्राह्मण देवता हैं, इन्द्र क्षत्रिय-देवता हैं तथा पूषा- वैश्य। पूषा के रूप में सूर्य स्वर्गीय चरवाहा, पथकर्त्ता और यात्री हैं, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक रहते हैं।[८]

ऋग्वेद में 'पूषा' को सूर्य की कल्याणकारिणी और पोषक शक्ति के प्रतीक देवता के रूप में माना गया है। पशुरक्षण और पशुसंवर्धन हेतु इनकी स्तुति करते हैं। सूर्य की पोषक और उपकारिणी शक्ति पशुओं के साथ-साथ मनुष्यों को भी पुष्ट करनेवाली है। पशु-संरक्षण, मार्ग-ज्ञापन आदि गुणों के कारण ये चरवाहों या गामीणों के सौर देवता हैं। इनका आवास ऊँचे द्युलोक में है। ये चारों भुवनों को चारों ओर से अच्छी तरह से देखते हैं। ये छः ऋतुओं को बार-बार लाते हैं, जल प्रवाहों को बहाने में इन्द्र के सहायक होते हैं।[९] ये इच्छाओं को पूर्ण करने वाले होने से वृषा है।[१०] वे प्रजापति पुत्र के अर्थ में 'विमुचोनपात् हैं।।[११] इन्हें दो बार 'विमोचन' भी कहा गया है।[१२] इनसे पापों से मुक्ति की प्रार्थना की गयी है।[१३] सौर देवता होने के कारण ही 'पूषा' के लिए 'आघृणि विशेषण का प्रयोग किया गया है।[१४] पूषा को एक बार 'अगोह्य' कहा गया है।[१५] पूषा स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं और यजमानों को उत्तम लोकों में ले जाते हैं।[१६] सविता की प्रेरणा से पूषा आकाश मे प्रयाण करते हैं।[१७] पूषा और सूर्य का सम्बन्ध स्पष्ट है- उनका एक रूप 'शुक्रम्' है तो दूसरा यजयम्[१८] अर्थात् सूर्य समान दिन और रात्रि के उत्पादक हैं।

पोषक देवता के रूप में पूषा को कई अन्य विशेषणों से भी जाना जाता हैं यथा- विश्ववेदस, पुष्टिम्भर, विश्वसौभग, पुरूवसु आदि।[१९] वे पशु तथा नर सभी के लिए पुष्टिकारक हैं।[२०] 'पशुपा' विशेषण से इनके पशुपालक रूप का ज्ञात होता है।[२१] पूषा गायों को चराने हेतु पीछे-पीछे चलते हैं और उनकी देखभाल भी करते हैं जो यजमान और स्तोता सोमाभिषवण करते हैं, उनकी गायों की रक्षा के निमित्त उनके पीछे-पीछे जाने की पूषा से प्रार्थना की गयी है।[२३] पूषा देवता से प्रार्थना करते हैं कि कुपात और व्याघ्र-हिंसा से बचाते हुए अहिंसित गायों के साथ वे सायंकाल अवश्य वापस आएँ।[२४] नष्ट (गोधन) धन को पुनः वापस दिलाने की प्रार्थना भी

6. निरुक्त12/16/2
7. ग्रीसवर्ल्ड - आर.आर. पी.पी.- 281-2
8. ऋ. 2/40/4; 2/40/5
9. ऋ. 10/26/2
10. ऋ. 1/42/1
11. ऋ. 8/4/15, 16
12. अथर्ववेद 6/112/3
13. ऋ.1/23/13, 1/138/4
14. ऋ. - 10/64/3
15. ऋ. 10/64/3
16. ऋ. 10/138/1
17. ऋ. 1/139/1
18. ऋ. 6/58/1
19. ऋ. 1/89/6; 4/3/7
20. ऋ. 10/26/7
21. ऋ. 6/58/2
22. ऋ. 6/54/5
23. ऋ. 6/54/6
24. ऋ. 6/54/7

उनसे की गई है।[२५] पूषा का चाबुक पशुओं को साधनेवाला है।[२६] पूषा से प्रार्थना है कि जब गाएँ घाँस खाने दूर चली जाए, तब पूषा उस गोरूप धन को अक्षय रखे।[२७] वे घोड़ों की रक्षा भी करते हैं।[२८] वे अज और अजा आदि सभी पशुओं के स्वामी हैं, वे भेड़ों के बालों से वस्त्र बुनते हैं और उनको पहनने योग्य बनाते हैं।[२९] इनमें नष्ट पशुओं को खोजने की सामर्थ्य है जो इनके चरवाहे पशुरक्षक रूप को पुष्ट करता है। पूषा अनष्टपशुः हैं और फिर इसी अर्थ में 'अनष्टवेदस हैं।[३०] **शाङ्खायन गृह्यसूत्र** में बाड़े से भागी या खोई गायों की रक्षा के लिए स्तुति का विधान है।[३१] ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पूषा देवता का पशुओं से सम्बन्ध पूर्णतः सुरक्षित है।[३२] खोजने की शक्ति से पूषा देवता गुप्ता, गुहास्थित और विचित्र सुगन्ध वाले सोम राजा को भी ढूँढ निकालते हैं।।[३३]

पूषा देवता मार्ग ज्ञाता और मार्ग संरक्षक भी हैं। इनसे सम्यक् मार्ग बताने की प्रार्थना की गई है तथा मार्गों की बाधा दूर करने का अनुरोध भी किया गया है। पथज्ञाता और पशुपालक ये दोनों रूप एक दूसरे के पूरक हैं।

ऋषियों के आधार पर पूषा का जन्म सूदूरतम पथ पर हुआ है, द्युलोक और पृथ्वी के सुदूर पथ पर। वे अपने दोनों प्रिय निवास स्थानों में जाकर लौटते हैं और उनको जानते भी हैं।[३४] मार्गों के संरक्षक और स्वामी अर्थ में वे 'पथस्पति' कहे गये हैं।[३५] ये पथ प्रदर्शक भी हैं।[३६] इसी कारण इनसे आगे बढ़ाने और मार्ग के पार पहुँचाने की प्रार्थना की जाती है।[३७] जिस प्रकार पूषा मर्त्यवर्ग को मार्ग दिखाते हैं उसी प्रकार उनका बकरा (छाग) यज्ञ के अश्व को मार्ग दिखाता है।[३८] इसी ऋचा के आधार पर मैकडॉनल मानते हैं कि पूषा के रथ को अच्युतपद बकरा खींचता है।[३९] दुर्गम पथ गामी पूषा का अजों (बकरों) से सम्बन्ध उचित ही है।[४०] पथों के ज्ञाता पूषा हमारे पिता को सुदूर पथ पर ले जाकर मार्ग बाधाओं को दूर करते हैं।[४१] पूषा से अभीष्ट देश ले जाने और शत्रुओं को नष्ट करने की प्रार्थना भी की जाती है।[४२] इनसे धन प्राप्ति के लिए मार्ग ढूंढ़ निकालने की प्रार्थना की जाती है।[४३] मार्ग-बाधा दूर कर शुभ-पथ दिखाने हेतु इनका आह्वान किया जाता है।[४४] पूषा पूर्ण रूपेण मार्गों के अधिपति।[४५] यही कारण है कि यात्री पूषा

25. ऋ. 6/54/10
26. ऋ. 6/53/9
27. ऋ. 8/4/18
28. ऋ. 6/54/5
29. ऋ. 10/26/6
30. ऋ. 10/17/3
31. शा.गृ.सू. - 3/9/1
32. तै. ब्राह्मण - 1/7/2/4
33. ऋ. 1/23/13, 14
34. ऋ. 10/17/6
35. ऋ. 6/53/1
36. वा.सं. 22/20
37. ऋ. - 1/42/1
38. ऋ. - 1/162/3
39. Macdonell V.M.P.-35
40. Keith RPVU. 1. pp. 107-8
41. ऋ. - 10/17/3, 10/17/5
42. ऋ. - 1/42/8
43. ऋ. - 6/53/4
44. ऋ. - 6/54/9
45. श. ब्रा. - 13/4/1/14

को हविष देकर यात्रा प्रारम्भ करते हैं और भटकने पर पुनः 6/53 सूक्त से पूषा की स्तुति करते हैं।[४६] **शाङ्खायन गृह्यसूत्र** में पूषा के लिए उनका सांयकालीन बलिभाग घर की देहली के बाहर रख देने का विधान है।[४७] पूषा देवता मनुष्यों के लिए समृद्धिदाता हैं, अतः उन्हें धन का स्वामी, धन की राशि, ऐश्वर्य का प्रवाह और धन का उत्पादक कहा गया है।[४८] सभी प्रकार के धन से सम्पन्न 'पुरुवसु' पूषा धन की वृद्धि करते हैं।[४९] धन प्रदान करने के लिए कई बार इनसे प्रार्थना की गयी है।[५०] धन-प्राप्ति हेतु पूषा से प्रार्थना है कि वे प्रभूत दक्षिणा देनेवाले गृहपति के पास ले चलें। दान न देनेवाले को दान देने के लिए प्रेरित करें तथा आरे से पणियों (देवताओं की गाय चुरानेवाले) के हृदय को काट दें।[५१] पूषा का एक सूक्त अर्थाभिलाषियों के जपने योग्य है तो दूसरा नष्ट धन की प्राप्ति हेतु जपनीय है।[५२] ये रायस्पोषम्[५३] के दृढ़ मित्र हैं और ये ही भोजन के सजग वर्धक और स्वामी भी हैं।[५४] वे अन्नदाता के रूप में भी स्तुत्य है।[५५] ये सुखकारी, कल्याणदाता और हमारे हितैषी भी हैं।[५६] कन्याओं से सम्बद्ध अभिलाषाओं के लिए पूषा का आह्वान किया गया है।[५७] बुद्धि की तीक्ष्णता के लिए वे प्रार्थनीय और स्मरणीय है।[५८] उनसे सभी प्राणियों के लिए सुख की कामना है।[५९] सामर्थ्यवान् बनाने, धन-धान्य युक्त करने, सम्पति सम्पन्न करनेवाले, तेजस्वी बनाने और उदर भरने के लिए पूषादेव का स्तवन अति-उपयोगी है[६०] ये सारे गुण पूषा देवता की श्रेष्ठता के प्रमाण हैं।

ये शत्रु-विनाशक और रक्षक दोनों रूपों में विश्वप्रसिद्ध हैं।[६१] ये वीरों के शासक, शक्तिशाली, वीर, बलशाली और पराक्रमी हैं।[६२] पूषा स्वयं शत्रुओं द्वारा अहिंस्य हैं, अतः संग्राम के समय उन्हें आगे चलने और तेजस्वी बनाने की प्रार्थना की गयी है।[६३] हिंसक शत्रुओं को रोकने और उनके नाश के लिए इनका आवाहन किया जाता है।[६४] पूर्वजों की रक्षा जिस प्रकार पूषा कर चुके है, वैसा ही हमारी भी रक्षा करें।[६५]

पूषा उपासकों के सखा है।[६६] इसी कारण इन्हें सुबन्धुः भी कहा गया है।[६७] ये इन्द्र के सहायक और मित्र भी हैं।[६८] इनकी मित्रता पाकर यजमान विविध भोगों को भोगते हैं।[६९] इसी

---

46. आ.गृ.सू. - 3/7/8
47. शा.गृ.सू. - 2/14/9
48. ऋ. - 6/55/2
49. ऋ. - 1/89/5
50. ऋ. - 1/40/10, 1/138/3
51. ऋ. - 6/53/2, 3, 5-7
52. ऋ. - 6/53; 6/54
53. तै.सं. - 5/4/6/2
54. ऋ. - 10/26/7
55. ऋ. - 6/53/1
56. ऋ. - 1/138/1
57. ऋ. - 9/67/10, 11
58. ऋ. - 8/4/14
59. ऋ. - 8/4/18
60. ऋ. - 1/42/9
61. ऋ. - 10/17/3
62. ऋ. - 1/106/4
63. ऋ. - 10/26/7
64. ऋ. - 6/48/16, 17
65. ऋ. - 6/48/19
66. ऋ. - 6/55/2
67. ऋ. - 6/58/4
68. ऋ. - 6/57/4
69. ऋ. 1/138/3

कारण इनकी अबाधित मैत्री काम्य है।[७०] ये सारे गुण पूषा देवता को परोपकारी और मित्रवत् प्रमाणित करते हैं।

पूषा देवता का व्यक्तित्व अस्पष्ट है। एक ऋचा में उनके दाहिने पथ की चर्चा हुई है।[७१] इनके बाल घुंघराले हैं।[७२] ये दाढ़ी भी रखते हैं।[७३] 'कपर्दिन्' शब्द (घुंघराले बाल) का प्रयोग इनके लिए दो बार हुआ। ये करम्भ खाते हैं।[७५] करम्भ घृतसिक्त सक्तु के रूप में खाद्य पदार्थ है। पूषा को 'करम्भप्रिय' विशेषण अतिप्रिय है।[७६] तभी तो इन्हें 'करम्भाद' कहा जाता है।[७७] **शतपथ ब्राह्मण** में उन्हें दन्तहीन कहकर सम्बोधित किया गया है, जो उनकी करम्भप्रियता के कारण ही है।[७८] अनेक ब्राह्मणों से पूषा की दन्तहीनता की पुष्टि होती है।[७९] इनके रथ का वहन अज करते हैं।[८०] इसी कारण इन्हें अजाश्वः' कहा गया है।[८१] स्पष्ट है कि अज ही इनके रथ के वाहक है।[८२] ये अति कुशल सारथि (रथीतमः) हैं।[८३] ये हाथों में सुनहरा बर्छा, नोंकदार आरा और अंकुश धारण करते हैं।[८४] उनके चक्र, कोश और शस्त्र का उल्लेख मिलता है, जो कभी नष्ट नहीं होते हैं।[८५]

ऋग्वेद में पूषा यज्ञ निर्वाहक, यज्ञ के नेता और यज्ञ के अर्धांश के भागी हैं।[८६] ये स्वयं 'हवि' कहलाने वाले अन्न के इच्छुक रहते हैं।[८७] हवि, पुरोडाश आदि के द्वारा पूषा की परिचर्या करनेवाला यजमान कभी नष्ट नहीं होता है।[८८] ये विप्रों के आधार हैं, देवता भी इनकी सेवा करते हैं।[८९] जिस प्रकार सारथि रश्मियों द्वारा अश्व खींचते हैं; उसी प्रकार स्तोता कल्याणार्थ पूषा को आकर्षित करते हैं।[९०] यजमान सूक्तों से पूषा की स्तुति करते हैं।[९१] इनके स्तोत्र अति स्पृहणीय-स्पार्हाः है।[९२] अनेक से स्तुत्य और प्रशंसित पूषा उरूशंस और पुरुष्टुत हैं।[९३] इस प्रकार स्पष्ट है कि पूषा का अस्तित्व स्वतंत्र देवता के रूप में है। वे महान्, सभी के ईश्वर तथा अजन्मा और अविनाशी हैं।[९४] बलयुक्त उत्पन्न पूषा देव की प्रशंसा सर्वत्र होती है, इनके स्तोत्र को कोई

70. ऋ. 6/48/18
71. ऋ. 6/54/10
72. ऋ. 6/55/2
73. ऋ. 10/26/7
74. ऋ. 6/55/2; 9/67/11
75. ऋ. 6/57/2
76. ऋ. 6/56/1
77.
78
79. गो. ब्रा. (30) 1/2
80. ऋ. - 6/55/6
81. ऋ. - 1/138/4
82. ऋ. - 6/57/3
83. ऋ. - 6/56/2,3
84. ऋ. - 1/42/6
85. ऋ. - 6/54/3
86. ऋ. - 1/138/1
87. ऋ. - 6/58/3
88. ऋ. - 6/54/4
89. ऋ. - 10/26/4
90. ऋ. - 6/57/6
91. ऋ. - 1/42/10
92. ऋ. - 10/26/1
93. ऋ. - 1/138/3
94. ऋ. - 10/26/9

बिगाड़ नहीं सकता।[९५] ये मनुष्यों से श्रेष्ठ और अन्य देवताओं की भाँति ऐश्वर्यशाली हैं।[९६] ये दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं, अतः सत्कर्मों के अनुकूल और दुष्कर्मों के प्रतिकूल चलते हैं।[९७] ये कवि, ऋषि और विद्वान् भी हैं।[९८] जो 'दस्म' और 'दस्मवर्चस्' विशेषण अग्नि और इन्द्र के हैं, यही विशेषण पूषा के लिए भी प्रयुक्त होता है।[९९] इन्हें दो बार 'नराशंस' भी कहा गया है।[१००] पूषा को माता का सहचर, उषा का जार और इन्द्र का भाई बताया गया है।[१०१] इनके पोषक सूर्य हैं, जिसे यहाँ उदयानन्तर माता रूप रात्रि को नष्ट करनेवाला, बहन उषा की आयु को घटाने वाला और इन्द्ररूप विद्युत् का भाई कहा जा रहा है।[१०२] इनका विवाह 'सूर्या' के साथ किया गया है।[१०३] इसी कारण से सूर्या विवाह सूक्त में पूषा से अनुरोध किया गया है कि वे दुल्हन का हाथ पकड़ कर उसे चलाएँ और उसके वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाएँ।[१०४] यद्यपि सूर्य को भी सूर्या का पति बताया गया है।[१०५] तथापि विवाह और वैवाहिक सुख-समृद्धि से पूषा का ही सम्बन्ध देखा जाता है।

अन्य ऋचाओं में सौर देवता पूषा को सूर्य से पृथक् बताया गया है। एक मन्त्र में पूषा को सूर्य के स्वर्णिम चक्र को घुमाने का उल्लेख है।[१०६] अन्यत्र कहा गया है कि पूषा अपनी सुवर्ण नौकाओं द्वारा सूर्य के दूतकर्म करते हैं।[१०७] सोम के साथ पूषा से प्रार्थना है कि वे सप्तचक्र, व्याप्त, विशाल, पंचरश्मिरथ को प्रेरित करें।[१०८]

इन समस्त ऋचाओं से स्पष्ट है कि सौर देवता पूषा का स्वतंत्र अस्तित्व है। ऋग्वेद में ऋचाओं के आधार पर इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ ग्रन्थ-

1) ऋग्वेद संहिता- सायणार्चाय विरचित भाष्य सहित, वैदिक संशोधन मण्डल, पुष्यपत्तन, 1933-195।
2) ऋग्वेद- संम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान वि. 2021
3) निरूवतम्- सं. श्री छज्जूराम शास्त्री, मेहरचक लक्ष्मनदास
4) शतपथ ब्राह्मण- एसियाटिक सोसायटिक, कलकता-1903-11
5) सूर्य देवता- डा. शशि तिवारी, मेहर चन्द लक्ष्मन दास पब्लिकेशंस दिल्ली-1994

व्याख्याता, मगही विभाग,
मगध विश्वविद्यालय

❖

95. ऋ. - 1/138/1
96. ऋ. - 6/48/19
97. ऋ. 10/17/5, 6
98. ऋ. 6/53/5
99. ऋ. 1/42/10
100. ऋ. 1/106/4
101. ऋ. 6/55/4, 5
102. ऋ. सु. भा. भाग पृ.-158
103. ऋ. 6/58/4
104. ऋ. 10/85/26
105. निरुक्त 12/7/2
106. ऋ. 6/56/3
107. ऋ. 2/40/3
108. ऋ. 1/154; 1/156; 7/100

प्राचीन काल में यज्ञ का महत्त्व

-डा. मोना बाला
एम.ए.(संस्कृत), पी-एच्. डी.

संस्कृत में 'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से बना है। इस धातु के तीन अर्थ होते हैं- देव-पूजा, सम्मेलन और दान। प्राचीन काल में जो यज्ञ होते थे- उनमें इन तीनों का समावेश था। इसमें न केवल देवताओं की पूजा होती थी, बल्कि राजाओं और विद्वानों का सम्मेलन भी होता था। वहाँ राजागण अपनी अपनी प्रजा की भलाई के लिए आपस में विचार-विमर्श करते थे। यह आज के शिखर सम्मेलन जैसा कुछ रहा होगा। विद्वद्गण आपसे में मिलकर शास्त्रार्थ करते थे और गम्भीर विषयों पर निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करते थे। यज्ञ में दान देने का भी प्रावधान था। इन सभी आयामों पर तथ्यों के साथ यहाँ आलेख प्रस्तुत है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही यज्ञों का महत्त्व रहा है। वेदों में अधिकांशत: यज्ञों के वर्णन प्राप्त होते हैं। यज्ञकुण्डों में मन्त्रोच्चारण के साथ दी गई हवि का सीधा सम्बन्ध देवताओं से है। यज्ञ की समिधाओं में प्रज्वलित अग्नि सीधे मंत्र कामनाओं का गमन देवताओं तक कर देती है। वेदों में विशेष कामनाओं हेतु विशेष यज्ञ की चर्चा आयी है। वैदिक काल एवं वेदोत्तर काल में स्पष्ट वर्णन है कि गृहपति विना पुरोहित के यज्ञ सम्पन्न करता था और यज्ञ में उसकी पत्नी भाग लेती थी। यजुर्वेद के अन्तर्गत कर्मकांडीय वर्णन आया, जो यज्ञों में बढ़ रहे प्रयोजनों को इंगित करता है। यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ, पुरुषमेध यज्ञ, सर्वमेध यज्ञ, वाजपेय यज्ञ प्रमुख हैं। राजाओं के लिए सर्वाधिक विशिष्ट एवं गौरव प्रदान करने वाला यज्ञ अश्वमेध यज्ञ था। इन यज्ञों के आयोजन पर ऋग्वेद में ऋचा गायी जाती तथा हवि दी जाती थी। लेकिन काल के बीतने पर यजुर्वेद में बलि एवं नृत्य-गान का भी वर्णन उपलब्ध है। अथर्ववेद संहिता में यज्ञ का सम्बन्ध ऐसी प्रार्थनाओं से जुड़ा जो अत्यन्त मानवीय क्रियाओं से जुड़ी थीं यथा जादू-टोना, झाड़-फूक आदि।यज्ञ क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए समिधा में जौ, उबलता दूध आदि डाला जाता है, अग्नि में हवि देते हुए छोटे-छोटे मन्त्रों का प्रयोग होता था, यथा - 'अग्निदेवाय स्वाहा' आदि। ब्राह्मणों में जहाँ यज्ञ अनुष्ठान को प्रमुखता मिली, वहीं आरण्यकों में यज्ञ का रहस्यवाद तथा पुरोहितों का दर्शन मुख्य विषय रहा।

कालक्रम से भारतीय जीवन परम्परा में यज्ञ उपस्थित रहे। रामायण काल में अग्निष्टोम यज्ञ के आयोजन का वर्णन तथा यज्ञ के फल रूप में प्रभु राम के जन्म का वर्णन आता है। रामायण में कथा के अनुसार जब राजा दशरथ पुत्र प्राप्ति के लिए अत्यन्त चिन्तित थे, तब उन्हें ऐसा विचार आया कि अश्वमेध यज्ञ किया जाए।

सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यज्ञाम्यहम् ।
(वा.रा.-1/8/2 का उत्तरार्ध)

अर्थात् अश्मेध यज्ञ पुत्र प्राप्ति हेतु किया जाने वाला एक विशेष अनुष्ठान बन चुका था। राजा के यज्ञ का अनुष्ठान करने के हेतु प्रस्तावना का सभी मंत्री जनों द्वारा अनुमोदन किया गया है तथा यज्ञ की सामग्री का संग्रह किया गया है। यज्ञ सम्बन्धी अश्व भूमंडल में छोड़ा जाए तथा यज्ञ भूमि सरयू के उत्तर तट पर निर्मित हुआ, इसका वर्णन महाभारत में उपलब्ध है। ब्राह्मणों के निर्देशों का पालन किया गया तथा योग्य उपाध्यायों के संरक्षण में अश्व छोड़े गए। रामायण में यज्ञ की शुचिता को बल देते हुए कहा गया कि विधिहीन यज्ञ कर्त्ता का विनाश करता है।

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति।

(वा.रा.-1/8/18 का पूर्वार्ध)

यज्ञ को विधि विधान युक्त होने को महत्त्व का माना गया है। यज्ञ का उद्‌देश्य तब तक फलीभूत नहीं मान्य है, जब तक उसके कृत में कुछ त्रुटि रहे। रामायण में यज्ञ के पुरोहित-चयन को भी विशेष महत्त्व का बताया गया है। सुमन्त्रजी ने राजा को पुराणोक्त एक कथा सुनाई है, जिससे ऋष्यशृङ्ग को पुरोहित बनाने पर सहमति बनी है।

ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रान् तव विधास्यति।
सनत्कुमारकथितमेतावद् व्याहृतं मया।।

(वा.रा.-1/8/19)

यज्ञ की उद्देश्य-पूर्ति में विधिवत् यज्ञ का आयोजन, योग्य एवं श्रेष्ठ पुरोहित से यज्ञ का सम्पादन अनिवार्य बताया गया है। रामायण में यज्ञ का भव्य आयोजन का वर्णन उपलब्ध होता है। महाराज दशरथ द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ में किये गये विधान से इस यज्ञ में किये कृत्यों का संबंध स्पष्ट होता है कि इस यज्ञ में न्याय और विधि के अनुसार कर्मों का उचित सम्पादन किया गया था। ब्राह्मणों ने प्रवर्ग्य (अश्वमेध के अङ्गभूत कर्मविशेष) की विधि, मीमांसा और कल्पसूत्र के अनुसार सम्पादन होता था तथा इसमें 'उपसद' नामक इष्टि-विशेष का भी शास्त्र के अनुसार कर्म किया गया। उसके बाद अङ्गभूत देवता का पूजन हुआ तथा इन्द्र को विधिपूर्वक हविष्य भाग अर्पित किया गया। परम्परागत विधि से सोमलता का रस निकाला गया।

यज्ञ में उच्चरित मन्त्रों की शुद्धता का बड़ा महत्त्व था। इस कारण अभ्यास किये हुए ब्राह्मण ही स्वर एवं वर्ण से सम्पन्न मन्त्रों से देवताओं का आवाहन करते थे। मधुर एवं मनोरम सामगान के आवाहन मन्त्रों के साथ ही होता (यज्ञ करनेवाला) हवि डालता था।

गतिभिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राह्वानैर्यथार्हतः।
होतारो ह्युरावाह्य हविर्भागान् दिवौकसाम्।।

(वा.रा.-1/14/9)

इस यज्ञ में यूप का प्रयोग किया जाता था जो अनेक प्रकार की लकड़ी से निर्मित हुआ करते थे। जिसमें बेल, पलास, खैर आसादि प्रमुख थे। कई दिनों तक चलने वाले यज्ञ में उपस्थित जनों को वस्त्र एवं अन्न का दान भी किया जाता था तथा अन्य कई शास्त्रोक्त विधियों का पालन किया जाता था।

रामायण में ही श्रीराम के द्वारा भी राजा बनने के उपरान्त अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया था राम से यज्ञ का आयोजन करने के लिए कहने पर लक्ष्मण इस यज्ञ का महत्त्व बताते हैं-

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन।।

(वा.रा.- उ.का./84/2)

राम के द्वारा यज्ञ का स्थल नैमिषारण्य में बनाया गया था। राम के द्वारा भी इस यज्ञ के आयोजन को भव्य बनाया गयाा था बड़ी भव्यता से सभी कार्यो को मूर्त रूप प्रदान किया गया था। इस यज्ञ में ही राम अपने दोनों वीर पुत्रों से मिले तथा निष्पाप/निष्कलंक सीता भी राम के समक्ष उपस्थित हुई। भारी संख्यावाली इस सभा में हर तरफ साधुवाद की ध्वनि गुजायमान थी। सभा के सामने ही जानकी अपने पुत्रों को राम के पास छोड़ पृथ्वी की गोद में समा गयी थी। रामायण आदिकाव्य का आरम्भ इस अद्‌भुत यज्ञ के वर्णन से होता है तथा अन्त भी यज्ञ से ही होता है।

महाभारत में वनपर्व के अन्तर्गत, तीर्थयात्रा पर्व में, वर्णन प्राप्त होता है कि पयोष्णी नदी के तट पर राजा नृग ने यज्ञ किया तथा सोमरस से देवराज को तृप्त किया। अमूर्तरया के पुत्र राजा गय ने भी इसी स्थल पर सात अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कराया था। इस यज्ञ में नियमित रूप से काष्ठ और मिट्टी की बनी वस्तुओं का उपयोग हुआ था ये वस्तुएँ राजा गय के सात यज्ञों में सुवर्ग से बनायी गयी थीं-

तस्य सप्तसु यज्ञेषु सर्वमासीद्धिरण्मयम्।
वानस्पत्यं च भौमं च यद् द्रव्यं नियतं मखे।।

(महा.-3/121/4)

इसमें वर्णन प्राप्त होता है कि यज्ञों में प्रायः चषाल, यूप, चमस, स्थाली, पात्री, स्रुक् और स्रुवा - ये सात उपकरण साधन उपयोग में लाये जाते थे राजा गय के यज्ञ में ये स्वर्ण के बनाये गये थे। चषाल यूप के ऊपर का गोलाकार काष्ठ होता था, यूप यज्ञस्तम्भ को कहते हैं, चमस सोमपान का पात्र हुआ करता था। स्थाली बटलोई को कहते थे, पात्री जिसमें पकी हुई सामग्री रखी जाती थी, स्रुक हविष्य अर्पण करने वाला उपकरण था, स्रुवा घृत आदि आहुति डालने में प्रयुक्त की जाती थी, जो प्रायः काष्ठ अथवा मिट्टी की बनी हुई होती थी लेकिन राजा गय ने इन्हें स्वर्ण का बनवाया था। इससे यह स्पष्ट है कि स्वर्ण का प्रयोग भी इसमें हुआ करता था।

इसमें वर्णन प्राप्त होता है कि सात यूपों में से प्रत्येक के ऊपर सात-सात चषाल होते थे। इस यज्ञ में सोमपान हुआ था, जिससे देवतागण हर्षोन्मत्त थे। ब्राह्मणों को अत्यधिक धनराशि दी गई थी। राजा गय ने विश्वकर्मा द्वारा बनी सुवर्णमयी गौएँ दक्षिणा में दी थी। वास्तव में नदियों के किनारे इस प्रकार के आयोजन को 'सत्र' से अभिहित किया जाता था।

महाभारत में राजा शर्याति ने यज्ञ कराया जिसे भृगु पुत्र च्यवन ने कराया था

प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमत्।
कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम्।।

(महा.-3/124/6)

राजा शर्याति के यज्ञ में कुछ अद्भुत बातें हुई थी। इस यज्ञ में अश्विनी कुमारों ने सोमरस हाथ में लिया तो इन्द्र ने इस कार्य हेतु मुनि च्यवन को मना किया। इसका कारण इन्द्र ने यह बताया कि ये दोनों अश्विनीकुमार यज्ञ में सोमपान के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि ये द्युलोक निवासी देवताओं के वैद्य हैं, वैद्यवृत्ति होने के कारण इन्हें यज्ञ में सोमपान का अधिकार नहीं है।देखिए,

उभावेतौ न सोमर्हौ नासत्याविति मे मतिः।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नार्हतः।।
(महा.-3/124/9)

जब च्यवन ऋषि ने अश्विनी कुमार को सोमरस देने की बात कही तो इन्द्र क्रोध में आ गए तथा अपने वज्र से यज्ञ को ध्वस्त करने की बात कही। ऋषि च्यवन ने इन्द्र के वध हेतु अग्नि में हवि डाली तथा कृत्या की माँग की। च्यवन के तपोबल से कृत्या अग्नि से उत्पन्न भी हुई। अग्नि से दैत्य के उत्पन्न होने पर इन्द्र पर संकट आ पड़ा। अन्त में अश्विनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया गया। इस वर्णन से स्पष्ट है कि यज्ञ का आयोजन विशेष महत्त्व के लिए होता था। यज्ञ में यदि बाधा हो तो मुनि अपने तपबल एवं मन्त्र सहित हवि के द्वारा यज्ञ का रक्षण करते थे। यज्ञों में सोमरस महत्त्वपूर्ण था।

महाभारत में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा राजा मान्धाता के जन्म की आयी है। इक्ष्वाकुल वंश में एक प्रसिद्ध राजा युवनाश्व हुए थे। उन्होंने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया। उन्होंने एक सहस्त्र अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किया तथा ईश्वर की आराधना की। राजा की कोई संतान नहीं थी। इसी बीच भृगुनन्दन च्यवन आए। आश्रम में रखे एक जल से भरे कलश को अपने तपोबल से अभिमंत्रित कर दिया। यह जल युवनाश्व की पत्नी को पीना था। इस जल के प्रभाव से युवनाश्व को इन्द्र के समान शक्तिशाली एवं वीर पुत्र का जन्म होना था।

कलश को वेदी पर रख कर सभी थके-हारे ऋषि सो गए। थोड़ी देर में युवनाश्व को प्यास लगी, वे व्याकुल हो गए तथा कलश का जल पी लिया। इससे उन्हें तृप्ति तो मिली, लेकिन एक समस्या खड़ी हो गई कि युवनाश्व को ही पुत्र को जन्म देना पड़ेगा। विधि कृत जान कर ऋषियों ने इसे मान लिया तथा सौ वर्षो के बाद युवनाश्य ने मान्धाता को जन्म दिया।

ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो महात्मनः।
वामं पार्श्वे विनिर्मिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः।।

(महा.-3/126/27)

मान्धाता अत्यन्त तेजस्वी थे उन्होंने भी बहुसंख्य यज्ञ कर भगवान् की आराधना की। मान्धाता ने

यज्ञमण्डपों का निर्माण कर के पर्याप्त धर्म अर्जन किया तथा उसी फल हेतु स्वर्गलोक में इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त कर लिया था।

चितचैत्यो महातेजा धर्मान् प्राप्य च पुष्कलम्।
शक्रस्यार्धासनं राजँल्लब्धवानमितद्युतिः।।

(महा.-3/126/37)

मान्धाता ने इतने यज्ञ किये कि चैत्यों से चारों ओर की पृथ्वी भर गयी। इन्हीं यज्ञों के कारण इस राजा के राज्य में अनावृष्टि नहीं हुई थी। मान्धाता को अपने महान् यज्ञ-अनुष्ठान हेतु बारम्बार स्मृत किया गया है।

यज्ञों के महत्त्व को देखें तो यह बात स्पष्ट होती है कि राजा, जो अपनी प्रजा के सुख का जिम्मेदार होता था, वह लोक हित एवं राज्य हित में यज्ञ अनुष्ठान करता था ये अनुष्ठान विधिपूर्वक किये जाते थे। राम के जन्म और मान्धाता के जन्म की कथा में यज्ञानुष्ठान का वर्णन है। यज्ञ से देवताओं से तपोबल को सुदृढ़ किया जाता था, तथा मनोवांछित इच्छा की पूर्ति की जाती थी। यज्ञों में विधिपूर्वक मन्त्रोचारण किया जाता था। यज्ञ के द्वारा अनावृष्टि को भी टाला जा सकता था। राजा को यज्ञ करने से यश की प्राप्ति होती थी। यज्ञों में ब्राह्मणों को भारी मात्रा में दक्षिणा दी जाती थी। यज्ञ का महत्त्व कालक्रम से घटता-बढ़ता रहा, परन्तु आधुनिक युग में भी इसे मान्यता प्राप्त है यह यज्ञ मनुष्य के हित के लिए कीए जाते हैं।

पता- जस्टिश राजकिशोर पथ,
न्यू एरिया, कदम कुआँ,
पटना- 800003
ईमेल- mona.bala123@gmail.com

❖

ज्ञान का मोल

चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण कर कुछ दिनों तक अध यापन-कार्य भी किया। पश्चात् उसने स्वदेश जाने का निश्चय किया। पन्द्रह चीनी विद्यार्थियों को जब यह खबर लगी कि ह्वेनत्सांग चीन जा रहे हैं, तो वे भी उसके साथ हो लिये, ताकि उसके सत्संग का अवसर प्राप्त हो। ह्वेनत्सांग ने नालंदा में अध्यापन करते वक्त कुछ ग्रन्थ लिखे थे तथा कुछ खरीदे भी थे, वे उसे भी अपने साथ ले जा रहे थे।

एक नौका तय की गयी और सभी वहाँ से रवाना हुए। उनका दुर्भाग्य ही कहिये कि रास्ते में तूफान आया और नौका हिंडोले खाने लगी। नाविक ह्वेनत्सांग से बोला, महाशयजी, यह नाव भारी हो गयी है और तूफान तेज है। आगे जाना मुश्किल है। आप कृपया ये मोटी-मोटी पुस्तकें फेंक दें।'' ह्वेनत्सांग पेसोपेश में पड़ गया कि इतने में एक विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला, ''गुरूदेव, इन पुस्तकों को कदापि न फेंकिएगा, क्योंकि ये ज्ञानामृत से परिपूर्ण हैं, जिनका हमारे देशवासियों को उपयोग हो सकेगा। हम यदि स्वदेश न भी पहुँचे, तो इससे किसी का नुकसान होनेवाला नहीं है।'' यह कहकर उसने अपने साथियों की ओर देखा और वे सारे के सारे विद्यार्थी बिना हिचक तूफानी नदी में कूद पड़े।

संकलन : मगन देव नारायण सिंह

भारतीय ज्योतिष की दृष्टि से नेत्ररोग-विमर्श

गणित-फलित ज्योतिषाचार्य,
विद्यावारिधि,
ज्योतिष परामर्शदाता,
महावीर ज्योतिष मण्डप,
महावीर मन्दिर, पटना

आचार्य राजनाथ झा

ज्यौतिष शास्त्र मानव मात्र के लिए उपयोगी है, भले इसे अखरकट्टू ज्योतिषियों ने अंधविश्वास फैलाने का जरिया बना लिया हो, किन्तु यदि हम शास्त्रीय विधि से प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं तो कुछ चौंकानेवाले तथ्य सामने आते हैं। महावीर मन्दिर में पचासों हजार लोगों को जन्मकुण्डली-परीक्षण और हस्तरेखा निरीक्षण करने के बाद आचार्य राजनाथ झा ने अनुभव किया है कि हमारे प्राचीन ज्योतिषियों ने जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया है वे आज भी प्रासंगिक हैं, हलाँकि उनका यह भी मानना है कि समय बीतने के कारण ग्रह-गति में आये सूक्ष्म विचलन को भी हमें आज के सन्दर्भ में परिष्कार करना पड़ेगा। यहाँ आचार्य राजनाथ झा ने नेत्ररोग के कारण एवं उनके समाधान पर विमर्श प्रस्तुत किया है।

भारतीय आस्थावादी ईश्वरवादी तथा प्रकृतिवादी दार्शनिक परम्परा न केवल मानव अपितु समस्त चराचर जगत् को ही ईश्वर अथवा ब्रह्ममय मानती रही है। ऐसी स्थिति में मानव उस ईश्वर की इच्छा के अनुरूप सुख दु:ख का भोग करता हुआ, रोग एवं अरोगिता के द्वन्द्व से गुजरता हुआ पुन: आकाश से गिरे हुए जल का सागर के प्रति गमन के समान उसी ईश्वर में विलीन हो जाता है। फलत: भारतीय ज्ञान समस्त रोगों का कारण अदृष्ट, दैव, ईश्वरेच्छा आदि को मानता रहा तथा उसका उपचार भी भैषज्य कर्म के अतिरिक्त ईश्वरोपासना, ग्रहशान्ति आदि के द्वारा करता रहा है।

अथर्ववेद में विभिन्न रोगों के शमन के लिए आहुति, जलाभिषेचन, शरीराभिमर्षण आदि कर्म के लिए विविध सूक्त कहे गये हैं। इन्हें सर्वभैषज्यकर्म कहा गया है। **अथर्ववेद** में मानव शरीर के विविध अंगों का सम्बन्ध विभिन्न पदार्थों से बतलाते हुए कहा गया है-

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि व आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय।। (५९.७)

पूर्व जन्मार्जित कर्म के कारण व्याधियों की उत्पत्ति लगभग सभी शास्त्रों में सामान्य है। धर्मशास्त्र में इसे कर्मविपाक की संज्ञा दी गयी है। स्मृति-रत्नाकर में कहा गया है-

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादभिः।। स्मृतिरत्नाकर

पूर्वजन्म में किये गये पाप इस जन्म में व्याधि के रूप में पीड़ा देते हैं, अत: हमारे शास्त्रों के अनुसार जप, तप, हवन, दान, पूजा-पाठ आदि से शान्ति करनी चाहिए।

आचार्य चरक लिखते हैं-

कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजा सन्ति चापरे।

कुछ व्याधियाँ पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण उत्पन्न होतीं हैं तथा कुछ कफ, पित्त एवं वायु के असन्तुलन से उत्पन्न होतीं हैं।

वराहमिहिर लिखते हैं-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभकर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

पूर्वजन्मार्जित जो शुभाशुभ कर्म होते हैं, उसे ज्योतिषशास्त्र के द्वारा देखा जाता है, जैसे अन्धकार में हम दीप के द्वारा किसी वस्तु को देख सकते हैं।

ज्योतिष शास्त्र रोगों का सम्बन्ध विभिन्न ग्रहों की स्थिति, उच्च-नीच, भाव, बलाबल एवं गोचर के आधार पर मानता रहा है। द्वादश भाव से शरीर के विभिन्न अंगों के शुभाशुभ का ज्ञान हमें इस प्रकार होता है-

1. शरीर, शिर, चेहरा, आकृति प्रकृति।
2. पुरुष की दायीं आँख, मुख, दाँत
3. कान, गला, हाथ
4. हृदय, फेफड़ा, छाती
5. आँत, अण्डकोष, मूत्राशय, गुर्दा
6. पैर, मलद्वार, पिण्डली, जंघा, दायाँ पैर
7. जननेन्द्रिय, लिंग, कमर, मूत्राशय
8. मूत्रद्वार, पैर, जंघा, गुप्त इन्द्रिय
9. गुर्दा, अण्डोष
10. हृदय, फेफड़ा, पैर
11. बायाँ हाथ, पैर, मज्जा
12. बायीं आँख

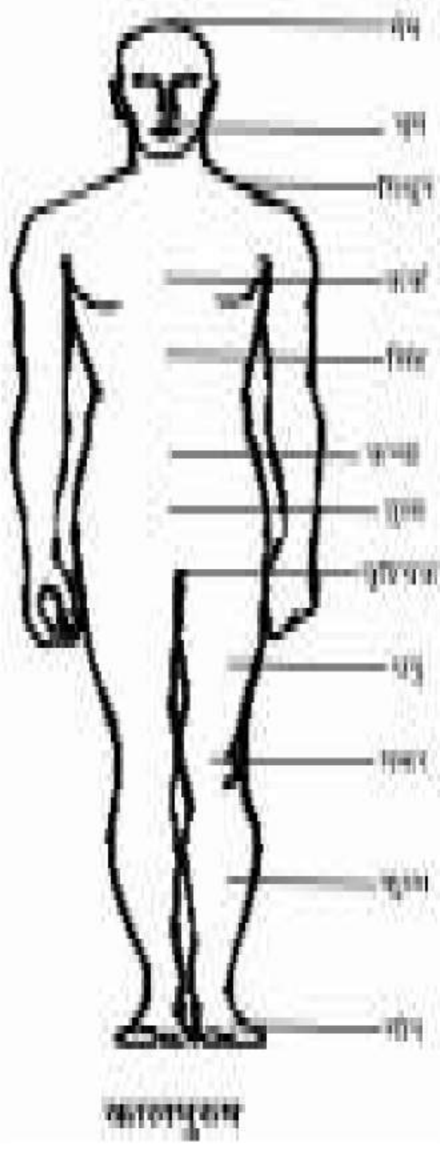

जब भी कोई अकारक ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भावस्थ हो जाता है, तो अपने बल के अनुसार अपनी दशा अन्तर्दशा में अपने से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करता है। मूलतः रोग जानने के लिए जन्मकुण्डली में इस प्रकार से विचार किया जाता है। कारक भाव, कारक राशि, कारक ग्रह, पापग्रह छठे भाव तथा छठे भावस्थ ग्रह से रोग की गणना की जाती है। कोई भी रोग होने के लिए निम्नलिखित योग महत्वपूर्ण होते हैं।

1. कारक भाव का कमजोर होना, जो अंग बीमारी से पीड़ित होगा उस भावेश का निर्बल होना।

2. विभिन्न ग्रह अपने अपने गुणों के अनुसार विभिन्न रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। यदि वह ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भाव से युति करे, तो रोग पीड़ा कारक होता है।

3. यदि पापग्रह किसी रोग का कारक ग्रह कारक राशि कारक भाव छठे भावस्थ ग्रह से अथवा कारक पापग्रह से पीड़ित होकर हो जाता है, तो इस भाव से संबधित रोग के कारक होते हैं।

ज्योतिष के मूर्धन्य ग्रन्थ वैद्यनाथ दीक्षित (15वीं शती) द्वारा प्रणीत **'जातकपरिजात'** के जातभंगाध्याय में रोगों की योगायोग के विस्तृत जानकारी मिलती है तथा दैवज्ञ महादेव पाठक विरचित **तत्त्वसार** में भी रोगों के योगों वर्णन विस्तृत हैं।

गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शशिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्॥

शुक्र नेत्र-सम्बन्धी रोग में कारक होते हैं।

नेत्र रोग पर ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से विचार करते समय हमें हमेशा यह ध्यान रखना होगा कि वैदिक धारा हमेशा सूर्य के साथ नेत्र का सम्बन्ध जोड़ती रही है। पुरुष सूक्त में पुरुष के नेत्र से सूर्य की उत्पत्ति मानी गयी है- **'चक्षुः सूर्यो अजायत।'** साथ ही सूर्य को मित्र, वरुण एवं अग्नि का चक्षु माना गया है- **चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः**। उपर्युक्त अथर्ववेदीय मन्त्र में भी **'सूर्यो मे चक्षुः** इसी अवधारणा को पुष्ट करता है। अथर्ववेद में अग्नि को भी चक्षु स्वरूप मानकर नेत्र की अरोगिता की प्रार्थना की गयी है-

चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा।

नेत्ररोग के विषय में जातक परिजातकार वैद्यनाथ दीक्षित ने कहा है।

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते।
नयनरहितः सौम्यासौम्ये सबुद्बुलोचनः।
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्तयपरं रवि-
स्त्वशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः॥(जातकपरिजात। जातभङ्गाध्याय : 52)

सिंह लग्न में सूर्य चन्द्र साथ हों, और शनि-मंगल की उन पर दृष्टि पड़े तो जातक नेत्रहीन होता है।

यदि सूर्य, चन्द्रमा पापग्रह साथ हों, और शनि-मंगल की उनपर दृष्टि पड़े तो जातक नेत्रहीन होता है।

यदि सूर्य, चन्द्रमा पापग्रह एवं शुभग्रहों के साथ-साथ दृष्टि हों, तो नेत्र में विकार, पानी बहना, चिपचिपी आँखे होना, सफेद निशान आदि होता है। द्वादश भाव के चन्द्र से बाँयी आँख तथा द्वादश भाव के सूर्य से दाँयी आँख में हानि होती है।

अशुभ योगों के रहने पर भी यदि शुभग्रह की दृष्टि पड़े तो हानि नहीं होती है। आगे भी उन्होंने कहा है-

व्यये रवीन्दू युगपत् पृथक्स्थौ नेत्रे हरेतामपसव्यसव्ये।
षट्छिद्रगाश्चाक्षि हरन्ति पापाः सव्यं रिपौ दक्षिणमष्टमस्थाः॥

(जातकपरिजात। जातभङ्गाध्याय : 54)

द्वादश में सूर्य और चन्द्र एक साथ हों तो दोनों आँखों में दृष्टि की अत्यधिक कमजोरी या अन्धापन होता है। अकेला सूर्य हो तो दाहिनी आँख व अकेला चन्द्रमा हो तो बायीं आँख अति कमजोर होती है। छठे या आठवें भावों में कोई पापग्रह हो तो नेत्रहानि होती है। छठे में कोई पापग्रह हो तो बाँयी आँख व आठवें भाव में कोई पापग्रह हो तो दायीं आँख नष्ट होती है। नेत्र दोष योग परेशानि को बढ़ता है। दाहिनी आँख के कारक ग्रह सूर्य और कारक भाव द्वितीय है। बायीं आँख के कारक ग्रह चन्द्रमा तथा कारक भाव द्वादश है। यह आँख में रोग कारक ग्रह है। जब द्वितीय एवं द्वादश भाव पापग्रह से पीड़ित होता है और कारक यह ग्रह सूर्य चन्द्रमा भी पापाक्रान्त होता है तो अन्धापन का योग आता है। यदि शुक्र भी किसी प्रकार सम्बन्धित हो तो बीमारी उत्पन्न होकर आँख नष्ट हो जाती है। ये कारक ग्रह सूर्य चन्द्रमा शुक्र पापग्रहों द्वारा आक्रान्त होने पर अपने बल के अनुसार आँख की दृष्टि हो हानि पहुँचाती हैं।

उदाहरणार्थ प्रस्तुत कुण्डली

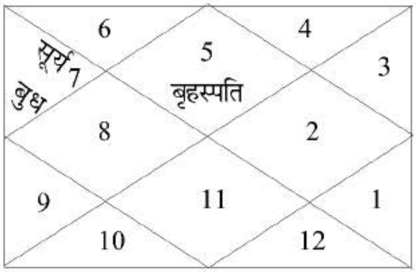

प्रस्तुत कुण्डली में द्वितीयेश, द्वादशेश, बुध एवं चन्द्रमा पापाक्रान्त है, लग्नभावस्थित शुक्र है अतः जातक बीमारी के कारण दोनों आंखों से अंधा हो गया।

जातक के जन्मांकचक्र में जब भी कोई रोग कारक ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भाव में होता है जो अपने बल के अनुसार अपनी दशा अन्तर्दशा में अपने से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करना है, रोग कारक भाव कारक ग्रह कारक राशि, पापग्रह छठेभाव भाव से स्थित ग्रह से रोग की गणना की जाती हैं। नेत्र सम्बन्धि रोग में द्वितीय भाव एवं द्वादश भाव से विचार किया जाता है।

मैं महावीर मन्दिर, पटना में लगभग 10 वर्षों से ज्योतिष सम्बन्धी परामर्श देता रहा हूँ और 10 हजार से अधिक व्यक्तियों की कुण्डली और हस्तरेखा देख चुका हूँ। अपने इस अनुभव के आधार पर नेत्र रोग के कारण सम्बन्धी कुछ अवधारणा बनी है कि कुछ प्रमुख योग कुण्डली में बनती है जिससे आंख में पीड़ा होती है।

1. मेष, वृष, मिथुन राशि लग्न में हो या द्वितीय भाव द्वादश भाव में हो तो नेत्र पीड़ा होती है।

2. मेष, वृष, मिथुन राशि लग्न, द्वितीय द्वादश भाव में हो तथा सूर्य, मंगल और शनि इन तीनों ग्रहों का इन भावों से सम्बन्ध हो तो नेत्रसम्बन्धी बीमारी होती है।

3. जिस जातक के कुण्डली में द्वितीय और द्वादश भाव में पापग्रह सूर्य मंगल शनि राहुल, केतु में से कोई बैठे हों या लग्न के नवमांश में स्थित हों तो नेत्रपीड़ा होती है।

4. सूर्य चन्द्र शुक्र इन तीनों में से कोई भी अथवा तीनों ही नीच राशिगत हो और दूसरा और बारहवाँ भाव उपर्युक्त राशि युक्त नीच ग्रहों से दृष्टि हो तो अवश्य नेत्र रोग होता है।

5. शुक्र नीच हो, अस्त हो, नीचास्त हो, वृष या तुला राशि दूसरे द्वादश भाव में हो, तो निश्चय ही बचपन में आँख में परेशानी होती है।

6. सूर्य में शुक्र की दशा में अन्तर्दशा हो, या राहु में शुक्र की अर्न्तदशा हो, अथवा शत्रु की दशा अर्न्तदशा में द्वितीयेश सूर्य की दशा में मोतियाविन्द हो जाते हैं तथा शल्य चिकित्सा के भी योग बनते हैं।

नेत्रनाश योग-

1. लग्नेश तथा द्वितीयेश की युति 6/8/12 वें भाव में हो तो नेत्र का नाश करता है।

2. सिंह लग्न हो तथा चन्द्रमा एवं सूर्य 6/8/12 वें भाव में तथा मंगल एवं शनि की दृष्टि उनपर पड़े तो नेत्र का नाश करते हैं।

रतौंधी-

1. द्वितीय द्वादशेश के साथ चन्द्रमा तथा शुक्र की युति लग्न भाव में हो तो रतौंधी होता है।

2. शुक्र या चन्द्रमा 6/8/12 वें भाग में हो तो रतौंधी होता है।

एकाक्षी योग-

1. द्वितीय भाव में मंगल हो तथा द्वितीय भाव पर सूर्य राहु या शनि की दृष्टि पड़े या द्वितीय भाव से ये ग्रह सम्बन्ध करे तो जातक काना होता है।

2. द्वादश भाव में सूर्य मंगल शनि व राहु हो तो बायीं आँख को नाश करता है।

3. द्वादश भाव में स्थित सूर्य दक्षिण नेत्र तथा चन्द्रमा बायीं आँख का नाश करता है।

दुर्बल दृष्टि-

1. लग्नेश चन्दम्रा नीच राशि के अष्टमस्थ शनि से दृष्ट हो तो दुर्बल दृष्टि होती है।

2. द्वितीय भाव पर षष्ठेश गुरु, षष्ठेश केतु, तथा अष्ठमेश शनि की दृष्टि पड़े, द्वितीयेश सूर्य शनि के कारण पापग्रह के मध्य में हो तो दुर्बल दृष्टि हो।

दुर्घटना से अन्धापन-

1. षष्ठेश सूर्य तथा षष्ठ भाव में मंगल हो राहु की दृष्टि लग्न भाव पर पड़े तो दुर्घना से नेत्र चला जाता है।

2. द्वादश भाव पर मंगल, शनि तथा शुक्र की दृष्टि पड़े, द्वादेश शनि छठे भाव में अष्टमेश शुक्र या राहु, मंगल से युति करें, तो दुर्घटना से नेत्रहीनता का योग बनता है।

शान्ति के उपाय-

1. जो आँख पापग्रह से प्रभावित हो रही हो उस ग्रह सूर्य या चन्द्र तथा उस भाव के स्वामी को रत्न द्वारा बली करें।

2. प्रभावी पापग्रह को जप दान द्वारा शान्ति करें।

3. सूर्य या चन्द्रमा या शुक्र जिसके प्रभाव से नेत्र संबधी बीमारी हो उनका यन्त्र धारण करें।

4. यदि दाँयी आँख खराब हो तो दो मुखी, बाँयी आंख खराब हो तो द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करें।

5. मूँगा, चावल, दूध, घी का दान करें।

6. **चाक्षुषोपनिषत्** का पाठ, गायत्री मन्त्र जप, सूर्यदेव को जल से अर्घ्य तथा सोलह रविवार को अलवण-व्रत करें।

7. रोगशान्ति हवन करें। महावीर मन्दिर, पटना में अथर्ववेद के सर्वभैषज्यकर्म में विनियुक्त सूक्तों से हवन, मार्जन, तर्पण, अभिमर्षण आदि की एक पद्धति बनी है जिससे हवन द्वारा अनेक रोगी लाभान्वित हुए हैं।

इस पद्धिति में उद्धृत एक अथर्ववेदीय मन्त्र से मैं अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए सबके नेत्र स्वस्थ रहने की कामना करता हूँ-

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पुरुषम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥४॥

❖❖

संस्कृत सीखें

(चतुर्थ पाठ)

पिछले तीन अंकों से हम संस्कृत भाषा सीखने के लिए पाठमाला दे रहे हैं। इसके अन्तर्गत सबसे पहले शब्दरूपों को कंठस्थ करने का पाठ आरम्भ किया है। पिछले अंक में 10 नपुंसक शब्दों के रूप दिये गये हैं। हमें आशा है कि हमारे नियमित पाठक शब्दों का रूप कण्ठस्थ कर चुके होंगे। इस अंक में 10 सर्वनाम शब्दों के रूप दिये जा रहे हैं। विभक्ति एवं वचन का विचार किये बिना सीधे इन शब्दों का रूप कण्ठस्थ कर लेना सबसे उपयुक्त है। ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक पाठों में याद करने से पूर्व अन्य किसी भी बात पर ध्यान देने से बाधा उत्पन्न होती है।

संस्कृत में सर्वनाम संज्ञा है। इसकी सूची पाणिनि ने इस प्रकार दी है– **सर्व । विश्व । उभ । उभय। डतर । डतम । अन्य । अन्यतर। इतर। त्वत्। त्व। नेम। सम। सिम । तद् । यद् । एतद् । इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवत्। किम्। पूर्व, अपर, अवर, दक्षिण, उत्तर, पर, अधर, स्व।**

संस्कृत में पुरुष तीन होते हैं जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है– बोलने वाला उत्तमपुरुष, सुननेवाला मध्यम पुरुष और इन दोनों से भिन्न अन्य पुरुष। इस प्रकार मैं उत्तम पुरुष, तुम मध्यम पुरुष और वह अन्य पुरुष। हिन्दी में अब तुम शब्द का प्रयोग न होकर आप का प्रयोग आदरसूचक अर्थ में होता है, जिसके लिए भवत् प्रतिपदिक है। वह मध्यम पुरुष न होकर अन्यपुरुष ही कहलायेगा। फलतः अब मध्यमपुरुष का प्रयोग बहुत कम हो गया है। किन्तु प्राचीन भाषा को पढने के लिए मध्यमपुरुष का भी ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार सबसे पहले अस्मत्, युष्मत्, भवत् और तत् इन शब्दों के रूप कण्ठस्थ कर लेना चाहिए। अस्मद् एवं युष्मद् शब्दों की द्वितीया, चतुर्थी एवं षष्ठी में वैकल्पिक रूप भी होते है, किन्तु उन्हें भी बाद में सीखेंगे।

अस्मत् (मैं)- अहम् आवां वयम्, माम् आवाम् अस्मान्, मया आवाभ्याम् अस्माभिः, मह्यम्, आवाभ्याम्, अस्मभ्यम्, मत् आवाभ्याम् अस्मत्, मम आवयोः अस्माकम्, मयि आवयोः अस्मासु।

युष्मत् (तुम)- त्वम् युवाम् यूयम्, त्वाम् युवाम् युष्मान्, त्वया युवाभ्याम् युष्माभिः, तुभ्यम् युवाभ्याम् युष्मभ्यम्, त्वत् युवाभ्याम् युष्मत्, तव युवयोः युष्माकम्, त्वयि युवयोः युष्मासु।

तत् शब्द, पुल्लिंग (वह)– सः तौ ते, तम् तौ तान्, तेन ताभ्यां तैः, तस्मै ताभ्याम् तेभ्यः, तस्मात् ताभ्याम् तेभ्यः, तस्य तयोः तेषाम्, तस्मिन् तयोः तेषु।

तत् शब्द, स्त्रीलिंग (वह)– सा ते ताः, ताम् ते ताः, तया ताभ्यां ताभिः, तस्यै ताभ्याम् ताभ्यः, तस्याः ताभ्याम् ताभ्यः, तस्याः तयोः तासाम्, तस्याम् तयोः तासु।

तत् शब्द, नपुंसक (वह)– तत् ते तानि, तत् ते तानि। शेष पुल्लिंग के समान।

भवत् शब्द, पुल्लिंग (आप)– भवान् भवन्तौ भवन्तः, भवन्तम् भवन्तौ भवतः, भवता भवद्भ्यां भवद्भिः, भवते भवद्भ्यां भवद्भ्यः, भवतः भवद्भ्यां भवद्भ्यः, भवतः भवतोः भवताम्, भवति भवतोः भवत्सु, हे भवान् हे भवन्तौ हे भवन्तः।

भवत् शब्द, स्त्रीलिंग (आप) भवती भवत्यौ भवत्यः भवतीं भवत्यौ भवतीः भवत्या भवतीभ्यां भवतीभिः भवत्यै भवतीभ्यां भवतीभ्यः भवत्याः भवतीभ्यां भवतीभ्यः भवत्याः भवत्योः भवतीनां भवत्यां भवत्योः भवतीषु, हे भवती हे भवत्यौ हे भवत्यः।

सर्व शब्द, पुल्लिंग (सभी)- सर्वः सर्वौ सर्वे, सर्वम् सर्वौ सर्वान्, सर्वेण सर्वाभ्याम् सर्वैः, सर्वस्मै सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः, सर्वस्मात् सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः, सर्वस्य सर्वयोः सर्वेषाम्, सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु, हे सर्व हे सर्वौ हे सर्वे।

सर्व शब्द, स्त्रीलिंग (सभी)- सर्वा सर्वे सर्वाः, सर्वाम् सर्वे सर्वाः, सर्वया सर्वाभ्याम् सर्वाभिः, सर्वस्यै सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः, सर्वस्याः सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः, सर्वस्याः सर्वयोः सर्वासाम्, सर्वस्याम् सर्वयोः सर्वासु, हे सर्वे हे सर्वे हे सर्वाः।

सर्व शब्द, नपुंसक (सभी)- सर्वम् सर्वे सर्वाणि, सर्वम् सर्वे सर्वाणि। शेष पुल्लिंग के समान रूप होंगे।

किम् शब्द, पुल्लिंग (कौन)- कः कौ के, कम् कौ कान्, केन काभ्यां कैः, कस्मै काभ्यां केभ्यः, कस्मात् काभ्यां केभ्यः, कस्य कयोः केषां, कस्मिन् कयोः केषु

किम् शब्द, स्त्रीलिंग (कौन)- का के काः, कां के काः, कया काभ्यां काभिः, कस्यै काभ्यां काभ्यः, कस्याः काभ्यां काभ्यः, कस्याः कयोः कासां, कस्यां कयोः कासु

किम् शब्द, नपुंसक (कौन)- किं के कानि, किं के कानि। शेष पुल्लिंग के समान रूप होंगे।

इदम् शब्द पुल्लिंग (यह)- अयम् इमौ इमे, इमम् इमौ इमान्, अनेन आभ्यां एभिः, अस्मै आभ्याम् एभ्यः, अस्मात् आभ्याम् एभ्यः, अस्य अनयोः एषाम्, अस्मिन् अनयोः एषु।

इदम् शब्द पुल्लिंग (यह)- इयं इमे इमाः, इमां इमे इमाः, अनया आभ्यां आभिः, अस्यै आभ्यां आभ्यः, अस्याः आभ्यां आभ्यः, अस्याः अनयोः आसाम्, अस्यां अनयोः आसु।

इदम् शब्द नपुंसक (यह)- इदं शब्दः नपुंसकलिङ्गः। इदं इमे इमानि, इदं इमे इमानि।शेष पुल्लिंग के समान रूप होंगे।

इसके साथ ही निम्नलिखित तालिका को हमेशा ध्यान में रखें-

प्रथमा-	1. बालक **ने**	2. दो बालकों ने	3.अधिक बालकों ने
द्वितीया-	4. बालक **को**	5. दो बालकों को	6. अधिक बालकों को
तृतीया-	7. बालक **से**	8. दो बालकों से	9. अधिक बालकों से
चतुर्थी-	10. एक बालक **के लिए**	11. दो बालकों के लिए	12. अधिक बालकों के लिए
पञ्चमी-	13. एक बालक **से**	14. दो बालकों से	15.अधिक बालकों से
षष्ठी-	16. एक बालक **का**	17.दो बालकों का	18. अधिक बालकों का
सप्तमी-	19 एक बालक **में**	20. दो बालकों में	21. अधिक बालकों में
संबोधन-	22.**हे** एक बालक!	23. हे दो बालकों	24. हे अधिक बालकों

संस्कृत के जिन शब्दरूपों को अभ्यास के लिए दिया जा चुका है उनमें आपने 21 या 24 शब्द देखे होंगे। वे क्रमशः संख्या में इसी प्रकार हैं। जिन शब्दों के संबोधन नहीं होते हैं उनके 21 रूप ही होते हैं। उनके अर्थ इसी प्रकार जानना चाहिए।

मन्दिर समाचार परिक्रमा

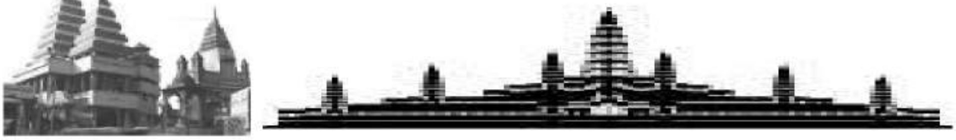

हनुमत्-जन्मोत्सव, दि0 10 नवम्बर, 2015

महावीर मन्दिर, पटना में हनुमान् जयन्ती के पावन अवसर पर दि0 10-11-20115 को विशेष पूजा-आराधना की गयी है। हर वर्ष की भाँति रामचरितमानस का नवाह पाठ दि0 02 नवम्वर से चल रहा था जिसका समापन आज के दिन हुआ। मन्दिर को फूलमालाओं से सजाया गया। इस वर्ष हनुमान्-जयन्ती का विशेष महत्व रहा है। अंजना के गर्भ से कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को रुद्रावतार हुमानजी का जन्म हुआ था। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने वैष्णव-मताब्ज-भास्कर में हनुमान्-जयन्ती के सम्बन्ध में कहा है कि कार्तिक मास के कृष्णपक्ष में चतुर्दशी तिथि को मंगलवार को स्वाती नक्षत्र और मेष लग्न में अञ्जना के गर्भ से परम बुद्धिमान्, शत्रुओं का संहार करनेवाले कपि श्रेष्ठ हनुमान् प्रकट हुए। व्रत आदि के द्वारा इस दिन उत्सव करना चाहिए। संयोग से इस वर्ष ये सारे योग एक साथ मिल रहे हैं। इस विशेष अवसर पर प्रातःकाल में वाल्मीकि-रामायण का विशेष पाठ हुआ तथा मध्याह्न-काल 10:30 वजे से 12:00 बजे तक ध्वज-पूजन हुआ। इस समय हनुमानजी के जन्म के उपलक्ष्य में महावीर मन्दिर के सचिव किशोर कुणाल के द्वारा महावीरजी की पूजा की गयी। इस अवसर पर हनुमान्-जन्मोत्सव से सम्बन्धित स्तुतियों एवं प्रार्थनाओं के अतिरिक्त सुन्दरकाण्ड का सामूहिक पाठ किया गया। यहाँ उपस्थित सभी भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण किया गया। चूँकि हनुमानजी का जन्म मेष लग्न में माना गया है, जो कार्तिक मास में हर वर्ष सन्ध्या के समय पड़ता है, अतः महावीर मन्दिर में सन्ध्याकाल में हनुमानजी को विशेष भोग लगाया गया तथा भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण किया गया।

इस वर्ष हनुमान्–जयन्ती के अवसर पर महावीर मन्दिर में चरणामृत के रूप में तिरुपति–तीर्थम् को चरणामृत के रूप में प्रस्तुत किया गया। ऐसा ही 'तीर्थम्' तिरुपति में चरणामृत के रूप में दिया जाता है। हनुमान्–जयन्ती के दिन से प्रारम्भ किया गया। इस चरणामृत 'तिरुपतितीर्थम्' का वितरण प्रतिदिन किया जायेगा। इसमें शोधित गंगाजल के अतिरिक्त जायफल, लवंग, इलायची, जावित्री, खानेवाला कपूर एवं केसर मिश्रित जल चरणामृत के रूप में दिया जाता है। इन औषधियों के मिश्रण से इसकी सुगन्धि एवं स्वाद में वृद्धि हुई है। इसका निर्माण तिरुपति नैवेद्यम् विभाग के निर्देशक श्री आर. शेषाद्रि के द्वारा किया गया है, जिसमें इन्होंने तिरुपति की परम्परा का पालन किया है।

रामचरितमानस के नवाह पाठ की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में तथा हनुमानजी के जन्मोत्सव के अवसर पर इनके निमित्त मन्दिर के संस्कार-मण्डप में सन्ध्या-आरती के बाद वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ हवन का कार्यक्रम हुआ, जिसमें समाज के सभी लोगों के मंगल की कामना की गयी।

श्रीरामजानकी विवाह, १६ दिसम्बर, २०१५

महावीर मन्दिर पटना में श्रीरामजानकी विवाह का एक भव्य आयोजन किया गया। पूरा मन्दिर-प्रांगण श्रद्धालुओं से खचाखच भरा था। सभी श्रद्धालु स्थिर भाव से बैठे-खड़े काफी शान्तभाव से राम-जानकी विवाह के प्रदर्शन एवं गायन का सुरुचि पूर्ण आनन्द ले रहे थे।

व्यासगद्दी पर बैठे श्रीरामकिशोर दास के नेतृत्व में पारम्परिक कलाकारों के एक समूह के द्वारा यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। इसमें लोक-शैली के पारम्परिक गीतों के समावेश से कलाकार दर्शकों को मोहित करने में समर्थ रहे। सबसे बड़ी बात यह थी कि सिंहासन पर विराजमान राम-जानकी-लक्ष्मण ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो आज एक बार फिर तीनों मूर्त्तियाँ सदेह उपस्थित हो गईं हैं। धनुष-भंग से विवाह तक के प्रसंगों को इन लोक-कलाकारों ने इस तरह सजीव कर दिया कि सभी दर्शक भाव-विभोर हो गये।

कार्यक्रम का आरम्भ गणेश वंदना से हुआ। कार्यक्रम में मंगलाचरण ने ही श्रद्धालुओं को एकाएक अपनी ओर खीच लिया। सभी ने कलाकार की आवाज के साथ ही जय-जय की ध्वनि से अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी। धनुष-भंग के लिए मंच पर एक भव्य धनुष रखा था। कलाकार अपनी पारम्परिक लोक-गीत गायन शैली का पूरी निष्ठा के साथ जमकर प्रदर्शन कर रहे थे। दूर-दूर देश के राजे धनुष-भंग के लिए पूरे आन-बान से आये यहाँ तक कि रावण भी पहुँचा। उनके द्वारा धनुष-भंग का असफल प्रयास लोगों को लोट-पोट करने में भी कामयाब रहा। लेकिन इस प्रदर्शन में शालीनता बनी रही।

इस कार्यक्रम में जनक के पितृत्व भाव का बड़ा ही जीवंत चित्र प्रस्तुत किया गया। सीता की माता सहित सारी जनक-वधुओं, ललनाओं की गीली आँखें उनकी घोर निराशा को व्यक्त कर रही थीं, लेकिन जब कलाकार ने आकाशवाणी सुनकर रावण के सद्यः चले जाने के साथ गायन की कुशलता दिखाई तो लोगों में खुशी छा गई। पश्चात् राजाओं का जत्था तक जब धनुष हिला नहीं सका तो सारे जनकपुरवासी एक बार फिर सन्न रह गये। इस स्थल पर कलाकारों की ''सिव के धनुषिया जब रामजी तोड़िहैं'' की ध्वनि से दर्शक झूम उठे। अब राम अपने गुरु की आज्ञा से आकर धनुष को इतनी सरलतापूर्वक तोड़ डालते हैं मानो कमलदण्ड हो। सभा मण्डप में चारों ओर खुशियाँ फैल गई। पुष्पवृष्टि हुई। जानकी ने श्रीराम को जयमाला पहनायी। गीत के पश्चात् बारात आई और विवाह सम्पन्न हुआ।

दूसरे दिन अप. 3 बजे से 7:30 बजे तक 'राम कलेवा' का आयोजन किया गया।

गीता सबके लिए, सब क्षण, २१ दिसम्बर, २०१५

आज दिनांक को गीता जयन्ती के उपलक्ष्य में महावीर मन्दिर में परमाचार्य उद्धवदासजी महाराज की अध्यक्षता में कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के आरम्भ में गीता के 11वें अध्याय से अर्जुन कृत श्रीकृष्णस्तुति का समवेत पाठ हुआ। इसमें डा.(प्रो.) रामविलास चौधरी, पं. मार्कण्डेय शारदेय, पं. सुरेशचन्द्र मिश्र, पं. रामदेव पाण्डेय तथा प. विजय तिवारी आदि लोगों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन महावीर मन्दिर के प्रकाशन एवं शोध प्रभारी पं. भवनाथ झा ने किया। कार्यक्रम में वक्ताओं के भाषण से यह बात सामने आयी कि गीता पारम्परिक रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी है, किन्तु इसके संदेश मानव मात्र की उन्नति के लिए उपकारी हैं। गीता के धार्मिक संदेश हमें सदैव संघर्षरत रहकर सफलता प्राप्त कराने में सहायक हैं।हम इसका जितनी बार पाठ करें नये-नये संदेश नयी-नयी ऊर्जा हमें मिलती जायेगी। यदि हम अपने लक्ष्य को पाने के लिए गीता में सुझाये गये मार्ग को अपनाते हैं तो हमें अवश्य सफलता मिलती है।

सन्त रविदास-जयन्ती, दिनांक 22 फरवरी, 2016

महावीर मन्दिर के परिसर में एक भजन-सन्ध्या एवं श्रद्धांजलि का कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वान् श्रीरंजन सूरिदेव, न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद, श्री जियालाल आर्य एवं आचार्य किशोर कुणाल ने महावीर मन्दिर में स्थापित प्रतिमा पर माल्यार्पण किया तथा उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके द्वारा समाज सुधार के स्वरूप की चर्चा की। श्रीरंजन सूरिदेव ने कहा कि सन्त रविदास हिन्दी साहित्य के प्रति सन्त कवि रविदास का अमर अवदान है, उन्होंने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की वाणी को जनसुलभ किया। न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि रविदास ने समाज को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास किया था, जिसमें वे एक सीमा तक सफल भी हुए।

श्री रामकिशोर दास तथा पं. गजेन्द्र महाराज ने रविदास के भजनों का गायन किया। इस अवसर पर मन्दिर द्वारा संचालित 'सन्त रविदास सेवा समिति, पटना द्वारा डा0 डोमन दास के संचालन में एक **शोभा-यात्रा** भी 12 :00 बजे निकाली गयी। यह शोभा-यात्रा करबिगहिया स्थित कार्यालय से चलकर चिरैयाँटाँड पुल होते हुए महावीर मन्दिर के सामने से गुजरकर जी0 पी0 ओ0 गोलम्बर, एवं डाकबंगला चौराहा होकर गांधी मैदान, एक्जीविशन रोड, होते हुए महावीर मन्दिर में 3:00 बजे शाम में समाप्त हुई।

❖

हनुमान-जयन्ती के अवसर पर मन्दिर परिसर में भव्य पूजन। (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, दि. 10 नवम्बर, 2015)

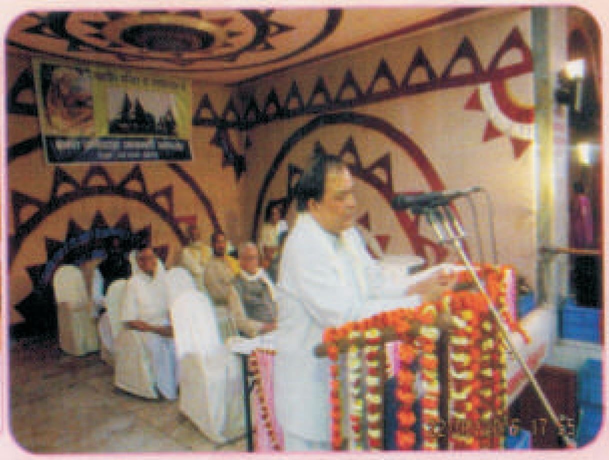

सन्त रविदास-जयन्ती के अवसर पर मन्दिर में कार्यक्रम। (माघ पूर्णिमा, दि. 22 फरवरी, 2016)

श्री सीताराम-विवाह-उत्सव (मार्ग शुक्ल पञ्चमी, दि. 16 दिसम्बर, 2015)

पत्रिका-पंजीयन सं. 5225/90

कथवलिया-बहुआरा, पूर्वी चम्पारण

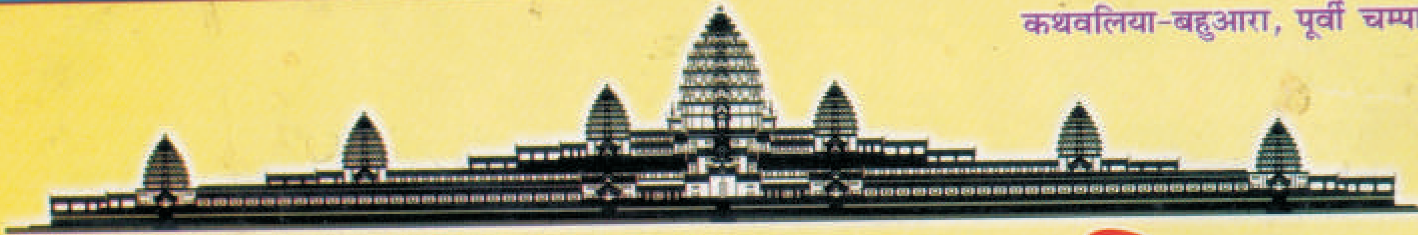

विराट् रामायण मन्दिर

(महावीर मन्दिर द्वारा निर्माणाधीन संसार का सबसे बड़ा मन्दिर)

मन्दिर-निर्माण में सहयोग राशि के बैंक कूपन महावीर मन्दिर से प्राप्त करें :-

1 वर्गफुट के निर्माण हेतु 7,707/- रुपये

15 वर्गफुट के निर्माण हेतु 1,15,605/- रुपये एक किस्त में या तीन किस्तों में

7,707/- रुपये वर्गफुट के अनुपात में 100 या 1000 वर्गफुट निर्माण हेतु सहयोग

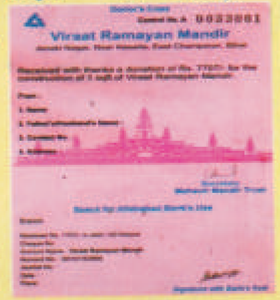

1000, 5000, 10,000 या इससे अधिक की राशि जमा करने के लिए जानकारी पंजीकरण काउंटर से प्राप्त करें।

1000, 5000, 10000 **या इससे अधिक की राशि निम्न खातों में भी जमा की जा सकती है-**

1. विराट् रामायण मन्दिर, इलाहाबाद बैंक, मुख्य शाखा, पटना, खाता संख्या- 50101162885
2. श्री महावीर स्थान न्यास समिति, इलाहाबाद बैंक, मुख्य शाखा, पटना, खाता संख्या- 50002488276
3. श्री महावीर स्थान न्यास समिति, भारतीय स्टेट बैंक, मौर्यालोक कॉम्प्लेक्स शाखा, गाँधी मैदान, पटना, खाता संख्या- 32642875294
4. श्री महावीर स्थान न्यास समिति, भारतीय स्टेट बैंक, एस. पी. बी. शाखा, पटना, खाता संख्या- 31911260294
5. श्री महावीर स्थान न्यास समिति, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, बुद्धमार्ग शाखा, पटना, खाता संख्या- 1270842463

Prakash Enterpises,Dharhara kothi, Naya tola,Patna-4,Mob No-9835270863.

डाक-पंजीयन संख्या- पी.टी. 443